द्वितीय अध्याय

'दलित चेतना - स्वरुप एवं विवेचन'

द्वितीय अध्याय - दलित चेतना - स्वरुप एवं विवेचन

प्रस्तावना -

आधुनिक हिंदी साहित्य में सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण किया जाता रहा है। साथ ही दलित, शोषित, स्त्री को भी साहित्य का विषय बनाया जाता रहा है। दलित साहित्य नवनिर्माण एवं परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। महात्मा फुले, शाहु महाराज, डॉ.बाबासाहेब अंबेडकर जैसे महापुरुषों के सफल कार्य के परिणामस्वरुप दलितों के जीवन में परिवर्तन हुआ। दलित समाज संगठित हुआ और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुआ। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए वह सामंतवादी, पूँजीवादी, सवर्णो के विरुध्द विद्रोह करने लगा।

भारत में प्राचीन काल से समाज व्यवस्था चार्तुवर्ण व्यवस्था में बटी हुई है। भारत में सनातन एवं धार्मिक प्रवृत्ती अधिक रही है। प्राचीन काल से ही दलित सामाजिकता के आघात सहते आ रहे हैं। चार्तुवर्ण व्यवस्था में समाज चार वर्गों में बंटा हुआ था - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शुद्र। शुद्र यानी दलित। प्रथम तीन वर्गों द्वारा दलितों पर अमानवीय अन्याय और अत्याचार किए गए। अमानवीय अत्याचार का शिकार और बहिष्कृत जीवन जीनेवाला दलित आज सामाजिक क्रांति की राह पर चल रहा है। स्वाधीनता के आंदोलन में राष्ट्रीय एकता के साथ बंधुता और सामाजिकता पर बल दिया गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय संविधान में दलितों के उद्धार के लिए प्रावधान का प्रबंध किया गया। महात्मा जोतिबा फुले, छत्रपति शाहु महाराज, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने दलितों की खोई अस्मिता को पाने के लिए दलितों में चेतना लाने का सफल प्रयास किया। इसी परिवर्तन से साहित्य में दलित चेतना का चित्रण अत्यंत तीव्रता से हुआ दिखाई देता है।

2.1 दलित शब्द का अशय -

दलित शब्द का प्रयोग भले ही वर्तमान युग में एक विशेषार्थ में किया जा रहा हो लेकिन विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति हेतु इसका प्रयोग पुरातन काल से होता रहा है। समकालीन साहित्य के रचनाकार एवं समीक्षकों की दृष्टि से ही नहीं अपितु भारतीय संदर्भ में 'दलित' शब्द का प्रयोग जाति बोधात्मक शब्द के रुप में हो रहा है। यह शब्द आदिवासियों, तथा आर्थिक सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछडी जनजातियों के लिए प्रयोग में लाया जाता रहा है। भारत में जातियों को पृथक-पृथक टूकडों में

रखने का कार्यकाल धर्म के कर्मकाण्ड ने किया। फलस्वरुप हिंदू धर्म में अनेक उप-जातियों का निर्माण हुआ इसकी ओर संकेत करते हुए डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जी लिखते हैं -"कुछ लोग कहते हैं कि हिंदू सभ्यता छः हजार साल पुरानी है। कुछ को इससे भी संतोष नहीं होता वे उसे उससे पुराना सिद्ध करना चाहते हैं। मुझे इस बात का अफसोस है कि इतनी पुरानी सभ्यता ने पाँच करोड अस्पृश्य, दो करोड आदिवासी लगभग पचास लाख अपराधी जातियों को जन्म दिया। इस सभ्यता को क्या कहा जा सकता है ? कही बुनियादी खराबी है, मैं समझता हूँ, हिंदूओं को अब इस बात पर विचार करना चाहिए, क्या इस तरह की सभ्यता गर्व करने योग्य है ? एक बार नहीं सौ बार सोचना चाहिए कि क्या इस तरह के परिणामों के बावजूद उन्हें सभ्य कहा जा सकता है।"[1] इस जातिगत व्यवस्था के कारण देश कमजोर होता गया। राजनीतिक दृष्टि से भी देश में अराजकता पैदा होती गई। परिणामस्वरुप देश में जातिगत भेदाभेद पनपने लगा। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देश में दो वर्ग निर्माण हुए। आज आजादी के साठ सालों के पश्चात भी वर्ग व्यवस्था खत्म नहीं हुई।

भारत में दलित शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से चलता आया है।'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है। विभिन्न शब्द-कोषों में दलित शब्द के अर्थ इन रुपों में मिलते हैं।

'दलित' विशे (सं स्त्रीलिंग दलिता) मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ। खण्डित। विनष्ट किया हुआ।[2]

'दलित' दब+कत : टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाडा हुआ, टूकडे-टुकडे हुआ, खुला हुआ, फैलाया हुआ।[3]

"दलित भूतकालिक कृदन्त (सं दल + क्त) 1.जिसका दलन हुआ हो। 2. जिसे कुचला दबा मसला या रौंदा गया। 3. चूर्णित टुकडे-टुकडे किया हुआ। 4. जो दबाया गया हो अथवा जिसे पनपने या बढने न दिया गया हो। हीन अवस्था में पडा हुआ। 5. ध्वस्त या नष्ट किया हुआ।"[4]

इस प्रकार दलित शब्द के अंतर्गत सदियों से समाज व्यवस्था से उपेक्षित, शोषित सामाजिक नियमों से बाधित नारी, भूमिहीन लोग, पराश्रित, विधवा नारी, दास गुलाम, बंधुआ मजदूर दीन आदि आते हैं।

---

1. डॉ.एन.सिंह, मेरा दलित चिंतन (दिल्ली, कंचन प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2007), पृ. 17

2. संपा. करुणापती त्रिपाठी, लघु हिंदी शब्द सागर (वाराणसी, नागरी प्रचारणी सभा: संस्करण 2004), पृ.43

3. डॉ.एन.सिंह, दलित साहित्य के चिंतन के विविध आयाम(बम्बई,आम प्रकाशन:प्रथम संस्करण1996) पृ.19

4. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश (प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन: प्रथम संस्करण 1996), पृ. 35

'दलित' शब्द का संकुचित एवं व्यापक अर्थ -

प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं। वाक्य, पद, भाव, रुप के अनुसार अर्थ बदलते हैं। 'दलित' अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अर्थ को स्पष्ट किया है। शब्द के अर्थ में भी व्यापकता और संकुचितता के संदर्भ परिवर्तन होता रहा है। आलोचकों एवं समीक्षकों ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है -

2 1.2 संकुचित अर्थ -

दलित संज्ञा के बारे में संकुचित अर्थ की दृष्टि से सोचनेवालों का कहना है कि अस्पृश्य या हरिजन, आदिवासी ही दलित है। जिन्हें युगों से उच्चवार्णियों ने पैरों तले कुचला है उनका स्पर्श होना भी निषिध्द माना है। इस संदर्भ में डॉ. श्योराज सिंह बेचैन कहते हैं - ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसुचित जाति का दर्जा दिया है।''[1]

2 1.3 व्यापक अर्थ -

दलित याने शोषित पिछड़ा दल ऐसा भी माना जाता है परंतु आज विश्व और समाज की रचना देखकर दलित का अर्थ विशाल बन जाता है। जैसे-जैसे समाज रचना, मानव सभ्यता बदलती गई वैसे-वैसे दलित शब्द का अर्थ भी बदलता गया। इसी के परिणामस्वरुप दलित शब्द का अर्थ व्यापक एवं विस्तृत बन गया। शरणकुमार लिंबाले दलित के बारे में लिखते है - ''दलित अर्थात केवल हरिजन और नवबौध्द ही नहीं बल्कि गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक दु:खी जनता भटकी बहिष्कृत जाति इन सभी का 'दलित' शब्द की व्याख्या में सामावेश होता है।'दलित' शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं होगी। इसमें आर्थिक तौर पर पिछड़े हुए लोगों का भी सामावेश करना चाहिए।''[2]

उपर्युक्त सभी मत दलित संज्ञा की अतिव्यापकता सिद्ध करते हैं। वह संज्ञा विशिष्ट जाति, धर्म, वर्ण और स्थान की श्रृंखला में बद्ध न होकर समस्त विश्व में जहाँ-जहाँ शोषित हैं वे सभी दलित की कोटी में आते हैं। दलित शब्द के अर्थ और व्याप्ति के संदर्भ में मत-मतान्तर को संगोष्ठियों और दलित संमेलनों

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र(नई दिल्ली,राधाकृष्ण प्रकाशन: द्वितीय संस्करण 2008) पृ.13
2. शरणकुमार लिंबाले, 'दलित साहित्य स्वरुप एवं प्रयोजन', हंस,राजेंद्र यादव,सपा.,(दिल्ली, अक्षर प्रकाशन: जून 1998), पृ. 53

में व्यक्त किया गया है। आज दलित साहित्य की व्याप्ति को समाचार पत्र तथा प्रसार माध्यम स्वीकार कर चुके हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के विकास ने भी जाति प्रथा को कमजोर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सार्वजनिक गतिविधियों में छुआछूत के खात्मे को जीवनभर एक प्रमूख कार्य मानते रहे। 1932 में उन्होंने इसी उद्देश्य से अखिल भारतीय हरिजन संघ की स्थापना की। अस्पृश्यता का जड - मूल से उन्मूलन का उनका आंदोलन मानवतावाद और बुध्दिवाद पर आधारित था। उनका तर्क था कि हिंदू शास्त्रों में छुआछूत को काई मान्यता नहीं दी गई है। लेकिन अगर कोई शास्त्र छुआछूत का समर्थन करे तो उसे नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह सब मानव-सम्मान के विरुद्ध है। 1953 में काका कालेकर कमीशन ने जातीय जनगणना की मांग की थी तथा जातीय आधार पर अन्य पिछडे वर्ग के लिए का सुझाव दिया था। परंतु बाद में 1978 में मंडल आयोग ने अन्य पिछड़े वर्ग के लिए निर्धारित करने का विचार रखा था। भारत में लगभग 52 प्रतिशत जनता अन्य पिछड़े वर्ग में आती है। अपनी रिपोर्ट में मंडल आयोग ने स्पष्ट कहा कि अंग्रेजी शासन के दौरान अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग सर्वग्राही शब्द बन गया था। जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोग शामिल थे।

2.2 दलित : परिभाषा -

दलित शब्द की अवधारणा पर कतिपय विद्वानों के मत सम्मत एवं माननीय हैं -

2 2.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि -

''भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है दुर्गम पहाडों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियों और आदिवासी, जयरामपेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती हैं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ भी दलित हैं। बहुत कम श्रम-मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।''[1]

2 2.2 मोहनदास नैमिशराय -

''दलित शब्द मार्क्स-प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहरा वर्ग की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक,

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2001), पृ. 14

आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते....अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमताओं का शिकार वर्ग आता है, जब कि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।''[1]

2 2.3 नारायण सुर्वे -

''दलित शब्द की कई मिली-जूली परिभाषाएँ हैं। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी हुई जातियाँ नहीं है। समाज में जो भी पीडित हैं, वे दलित हैं। ईश्वर निष्ठा या शोषण निष्ठा जैसे बंधनों से आदमी को मुक्त रहना चाहिए। उनका स्वतंत्र अस्तित्व सहज स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके सामाजिक अस्तित्व की धारणा, स्वतंत्रता समता और विश्वबंधुत्व के प्रति निष्ठा में ही निर्धारित होनी चाहिए, यही दलित साहित्य का आग्रह है।''[2]

सुर्वेजी ने अपनी परिभाषा में दलित को वर्गगत या वर्णगत में न मानते हुए शोषित को ही दलित माना है।

2 2.4 अर्जुन डांगले -

''दलित शब्द का अर्थ साहित्य के संदर्भ में नया अर्थ देता है। दलित यानी शोषित, पीडित समाज, धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है, वह मनुष्य और सिर्फ वही मनुष्य क्रांति कर सकता है। यह दलित साहित्य का विश्वास है।''[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट अवधारणा बनती है कि दलितों को केंद्र में रखकर लिखा जानेवाला साहित्य दलित साहित्य है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद, निराला, नागार्जून आदि साहित्यकार दलितों, पिड़ितों और शोषितों को लेकर साहित्य रचना करने लगे थे। तब वर्णविशेष दलित परिधि में नहीं आता था, अपितु शोषित व्यक्ति या समाज, नारी या पुरुष दलित की परिधि में आते थे। सामाजिक,

---

1. मोहनदास नेमिशराय, 'साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल' नया पद, शमशेर बहादुर सिंह, संपा., (नई दिल्ली, जुलाई सितबंर: संस्करण 1997), पृ. 41
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2001), पृ.15
3. .... वही ....,पृ. 15

आर्थिक, धार्मिक इन तीनों दृष्टि से दलित का बोध होता है।

चेतना शब्द का अर्थ और परिभाषा -

चेतना शब्द का प्रयोग साहित्य, दर्शन और मानवविज्ञान में मिलता है। चेतना का संबंध मानव की आंतरिक शक्ति चित से होता है। चेतना एक ऐसी प्रवृत्ति है जो जीवन को उत्तेजित करती है। चेतना का अर्थ जीवन में मिलनेवाली प्रेरणा से है। वह एक ऐसी प्रेरणा, शक्ति एवं ताकत है जो अन्याय का विरोध करती है वह अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए विद्रोह करती है। अनेक शब्द कोशों में चेतना शब्द का अर्थ इस प्रकार है -

2 3.1 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में चेतना का अर्थ है -

''बुध्दि मनोवृत्ती, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, स्मृति, सुधि, चेतनता होश।''[1]

2 3.2 'समांतर कोश हिंदी थिसारस' में चेतना का अर्थ है -

''अनुभूति एहसास, चेतना; आंतरिक ज्ञान; होश आना, चेतना आना; जागना उठना।''[2]

2 3.3 मानक हिंदी कोश के दूसरे खंड में -

''चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति जिसमें जीवन या प्राणी को आंतरिक तत्वों या बातों का अनुभव या आन होता है; बुद्धि, समझ, मनोवृत्ति याद स्मृति है।''[3]

2.4 चेतना की परिभाषा -

अनेक विद्वानों ने चेतना को प्रवाह माना है। वह सदैव गतिशील एवं निरंतर परिवर्तनशील है। चेतना मूलत: अखंड है। चेतना में बुद्धि की अपेक्षा अनुभूति की प्रधानता रहती है। चेतना को समझने के लिए उसके अर्थ के साथ-साथ परिभाषा को देखना आवश्यक है।

2.4.1 डॉ.एन.एस.परमार -

''दलित चेतना' का अर्थ होगा-दलित वर्ग विषयक गंभीर चिंतन।''[4]

---

1. संपा.नवलजी, नालंदा विशाल शब्दसागर (नई दिल्ली, आदिश बुक डिपो: संस्करण 1988), पृ. 388
2. सपां. अरविंदकुमार, समांतर कोश हिंदी थिसारस (नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया: संस्करण 1997), पृ.969
3. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश (प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन: संस्करण 1966), पृ. 388
4. डॉ.एन.एस.परमार, दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास (कानपुर, चिन्तन प्रकाशन: संस्करण 2010), पृ. 22

2.4.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि -

दलित चेतना का सीधा संबंध अंबेडकर दर्शन से है । वही प्रेरणास्त्रोत है । वाल्मीकि के अनुसार ''सामाजिक उत्पीडन, सामंती सोच, वर्णव्यवस्था से उपजी उँच नीच ने दलितों को शताब्दियों से मानसिक गुलामी में जकडकर रखा हुआ है । उसकी मुक्ति के तमाम रास्ते बंद थे । इस गुलामी से मुक्त होने का विचार ही दलित चेतना है ।''[1]

इस प्रकार चेतना से अभिप्राय है कि परंपरागत मूल्यों का त्याग करना तथा नवीन मूल्यों का स्वीकार करना । मानव जीवन जैसे-जैसे विकसित होता गया वैसे-वैसे उसमें चेतना का निर्माण हुआ ।

2.5 दलित साहित्य का स्वरुप -

दलित साहित्य मानव जीवन में समता प्रस्थापित करने की अपेक्षा रखता है । दलित साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे संतु निरामपा'के लोकहित सर्वोदय की कामना करता है । दलित साहित्य भारतीय समाज में स्थित मानवीय मूल्यों के प्रति सजग होकर समाज में परिवर्तन की दिश-निर्देश करता है । समतावादी सुंदर समाज की कल्पना करता है । बुद्ध ने साफ शब्दों में कहा था -

''न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मना वसलो होति, कम्मना होति ब्राह्मणो ।''[2]

अर्थात जन्म से न कोई वृषल (शुद्र) होता है, न जन्म से कोई ब्राह्मण । कर्म से ही कोई शुद्र और कोई ब्राह्मण होता है । कबीर ने भी जाति-पाति का विरोध किया है । कर्मकांड को नकारा है । कबीर का कहना है 'जाति पाति पूछैं न कोई हरि को भजे सो, हरि का होई' और यही सत्य है । आज हमे जाति की अपेक्षा ज्ञान को महत्व देना चाहिए ।

भारतवर्ष में दलित साहित्य ने अपनी विशेष जगह बना ली है । दलित एवं दलित साहित्य का अर्थ ऐसे वर्ग से लिया है - जो हजारों बरस की दास्ता की बेडियों से जकडा था । आजादी के पश्चात दलितों को स्वतंत्रता का आभास हुआ और उन्होंने अपने बंधनों को तोडने के लिए संघर्ष किया । आज दलित

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि 'कब तक इन प्रश्नों से बचेगा मार्क्सवाद', हंस,राजेंद्र यादव, संपा., (दिल्ली, अक्षर प्रकाशन: जून 1998), पृ. 48
2. हरिनारायण ठाकूर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र (दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ: प्रथम संस्करण 2009), पृ. 148

शिक्षित हो रहे है। अन्याय के प्रति विद्रोह कर रहे हैं। वह यथास्थितिवादी ताकतों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं जातिव्यवस्था नष्ट कर के भारत में समता बंधुत्व आदि मूल्यों को स्थापित कर के जातिविहिन भारत बनाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। हमारे देश में अस्पृश्य जातियों का एक ऐसा समूह रहा है जो समाज प्रक्रिया की जटिल प्रक्रिया में शामिल होकर भी राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग है। परंतु प्रेमचंद्र के आगमन के बाद शोषित, पीड़ित जनजीवन का चित्रण साहित्य में होने लगा। इस दृष्टि से प्रेमचंद का योगदान महत्वपूर्ण है। हरिनारायण ठाकूर लिखते हैं "प्रेमचंद किसी एक व्यक्ति और विचारधारा से सबसे अधिक प्रभावित और प्रेरित है तो वह है गांधी और गांधीवाद। इसलिए उनके अधिकांश उपन्यास कहानियों में गांधीवादी हृदय परिवर्तन और सुधारवादी आदर्श चित्रित है। किंतु प्रेमचंद केवल गांधीवादी कथाकार नहीं हैं। उनके मन में कहीं न कहीं से अंबेडकरावाद भी झाँक रहा है अन्यथा वे अंबेडकरवाद के हर आंदोलन पर कहानी नहीं लिखते उनकी ऐसी कहानियों में 'मंदिर' (1927), 'मंत्र' (1928), 'ठाकूर का कुआँ' (1932), 'दूध का दाम' (1934), आदी प्रसिध्द हैं। इन कहानियों पर अम्बेडकर के 'महाड़ और कालाराम मंदिर' आदि आंदोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है।"[1] दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत इतिहास में महात्मा रैदास का जीवन है। उन्होंने ही सर्वप्रथम दलित जीवन की पीडा को अनुभव किया। बाद में मराठी में इसका विकास हुआ। बुद्ध , रैदास, कबीर महात्मा ज्योतिबा फुले, शाहू महाराज, डॉ बाबासाहेब अंबेडकर आदि के विचारों से प्रभावित साहित्य दलित साहित्य माना गया है। दलित साहित्य, दलित समाज के मन का दर्पण, मन का आलेख, दस्ताऐवज, संघर्ष का प्रतिक है। संघर्ष दलित साहित्य का मूल है। दलित साहित्य का सौंदर्य संघर्ष में है।

2.6 वर्तमान काल में दलित -

स्वातंत्र्यपूर्व काल में दलितों का जीवन सोचनीय था। अंग्रेजो का शासन और उच्चवर्णियों के शोषण में समाज परिवर्तन आसान नहीं था। अन्यायी और रुढिप्रिय उच्चवर्ण पर प्रहार करने के लिए उनमें से कई विचारक, समाज सुधारक सामने आये। उन्होंने उच्च वर्ग पर तीखी आलोचना की और दलितों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। उन्हें शब्द प्रमाण की अपेक्षा बुद्धि प्रमाण पर चलने के लिए प्रवृत्त किया गया। उन्हें जातिभेद, वर्णभेद, उँचनीच का निर्माता मनुष्य है, यह सिखाया गया। महान

1. हरिनारायण ठाकूर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र (दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ: प्रथम संस्करण 2009), पृ. 148

विभूतियों का समाज सुधार उँच-नीच का पथ निर्विघ्न नहीं था। इन समाज सुधारकों को उच्च वर्ण द्वारा भला बुरा सुनना पडा। इनपर ब्राह्मण द्वेष्टा, धर्म द्वेष्टा जैसे आरोप लगाये गए। उन्हें समाज द्वारा अपमानित, लांछित एवं तिरस्कृत होना पडा फिर भी वे अपने कार्य से अलग नहीं हुए। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, महर्षि विठ्ठल रामजी शिंदे आदि समाज सुधारकों का कार्य महत्वपूर्ण रहा। डॉ.अम्बेडकर जी के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना हुई वह है धर्म परिवर्तन। उन्होंने धर्म परिवर्तन की घोषणा 1935 में की थी और उसे 1956 ई में बौद्ध धर्म की स्वीकृति से पूर्ण किया। 1935 से 1956 की अवधि में हिंदू समाज व्यवस्था में वैचारिक परिवर्तन नहीं हुआ परिणाम स्वरुप डॉ. अम्बेडकरजी ने घोषित किया कि मैं जन्म से हिंदू हूँ लेकिन हिंदू धर्म में नहीं मरुँगा। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकरजी की भाँति कर्मवीर भाऊराव पाटीलजी ने इस काल संक्रमण में शिक्षा के वटवृक्ष की छाया से दलितों का उद्धार किया। दलितों की दासता से डॉ. अंबेडकरजी पीड़ित थे। उसी प्रकार की पीडा अन्यों के मन में नहीं थी। स्वाधीनता के पूर्व कालानुरुप अनेक समाज-सुधारक निर्माण हुए उन्होंने उच्चवर्गीय जनता का पर्दाफाश करके उनमें स्वाभिमान जगाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात केंद्र और राज्य सरकार ने दलितोद्धार को प्रोत्साहन देने के लिए समय-समय पर उचित कानून बनाए। पिछड़ी एवं आदिवासी जातियों की आर्थिक कमजोरी को जानकर उनके बच्चों को प्राथमिक शिक्षा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए छात्रावृत्ति का प्रबंध किया गया। सरकारी नौकरियों में भी आरक्षण की योजना बनाई। इसी कारण अब दलितों के आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होने लगा है।

डॉ अंबेडकरजी ने दलित समाज को जागृत करने उनके स्थिति में सुधार लाने और दलित समाज को संगठित करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने पत्रिकाएँ निकालकर दलित समाज में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया, दलितों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने का संदेश दिया।

दलित वर्ग को संदेश देते हुए डॉ अंबेडकर कहते हैं - ''अस्पृश्य वर्गा ने आपल्या उध्दारासाठी दुसरा कोणीतरी येईल अशी अपेक्षा बाळगू नये, कदाचित एखादा महात्मा अवतरलाच तर तो एकटा काहीच करु शकणार नाही अस्पृश्य वर्ग नेहमीच दुसऱ्याच्या मदतीवर अवलंबून राहिला तर स्वत:चेच नुकसान करुन घेईल आणि स्वत:बरोबर पुढच्या पीढीचेही नुकसान करील म्हणून अस्पृश्य वर्गाने अन्यायाच्या

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

चक्रातून सुटण्याचा प्रयत्न करावा आणि स्वत:चा उद्धार स्वत:च करावा''[1]

(अस्पृश्य वर्ग ने अपना उद्धार करने के लिए कोई आएगा ऐसा नहीं मानना चाहिए । अगर कोई महत्मा आया भी, तो वो अकेला कुछ नहीं कर सकेगा । अस्पृश्य वर्ग हमेशा दूसरों पर ही अवलंबित रहेगा तो इसमें उसका खुद का नुकसान होगा । उसके साथ आनेवाली पीढियों का भी नुकसान होगा । इसलिए अस्पृश्यों को अन्याय से छुटकारा पाने का प्रयास करना चाहिए और स्वयं का उध्दार स्वयं करना चाहिए ।) डॉ अंबेडकर जी दलित वर्ग के विकास में युवकों का स्थान महत्वपूर्ण मानते थे । जो समाज सोया हुआ है उसे जगाने, उनके मन में चेतना जागृत करने, उन्हें समानता की लढाई के लिए तैयार करने की सलाह अंबेडकरजी आजन्म देते रहे ।

आज दलितों की स्थिति में परिवर्तन हो रहा है । दलितों के हितों की रक्षा, सामाजिक उन्नति, समान अधिकारों की प्राप्ति आदि के लिए भारतीय संविधान में प्रबंध किया गया है । अस्पृश्यता विरोधी कानून 1956 में बनाया गया । दूसरी गोलमेज परिषद की मांगों को समज लेने के लिए महात्मा गांधीजी और डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी 14 अगस्त 1931 को मणिभुवन मिले । 12 सितंबर को दूसरी गोलमेज परिषद लंदन में शुरु हुई । दलितों को प्रौढ मतदान का अधिकार प्राप्त करने के लिए डॉ बाबासाहब अंबेडकरजी को संघर्ष करना पडा । वे कहते थे, ''कुछेक चुनिंदा लागों को ही मतदान का अधिकार देने से जो सरकार बनेगी, वह अल्पसंख्याकों की सरकार होगी । इससे बहुसंख्यकों के हित की डोर अल्पसंख्यकों के हाथ में रहेगी ।''[2] अंबेडकरजी ने प्रथम और द्वितीय गोलमेज परिषद में अपनी मांगे पेश की । उच्चवर्णीय सनातनी हिंदू मन को भेदभाव, उच्च-नीच, जाति-पाति की नीति का त्याग करने के लिए ललकारा परंतु वह भेद नीति समाज का अंग बनकर रही । डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी के जीवन में महत्वपूर्ण घटना घटित हुई वह यह कि उन्होंने 1935 में धर्म परिवर्तन की घोषणा की । 1932 से 1956 की अवधि में हिंदू समाज में वैचारिक परिवर्तन की अपेक्षा की थी परंतु डॉ अंबेडकरजी की निराशा हुई । ''14 अक्तुबर 1956 को विशाल जनसभा में लाखों दलितों के साथ बौध्द धर्म स्वीकार कर लिया । बाबा

---

1. डॉ.चंद्रकान्त निकुंभे, समाज प्रबोधनकार डॉ.बाबासाहेब अम्बेडकर (पुणे, सुगावा प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2005), पृ. 67

2. लक्ष्मण हर्दवाणी, समता के समर्थक आंबेडकर (दिल्ली, नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया: पाँचवा संस्करण 2005),पृ. 46

साहब की आवाज काँप रही थी। उन्होंने रुँधे गले, नम आँखों और भारी मन से धर्मांतर किया।''[1] इस घटना से दलितों में वैचारिक प्रतिक्रिया अवश्य हुई। डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी ने दलित संगठन शक्ति के बल पर दलितों में चेतना लाने का काम किया। डॉ बाबासाहेबजी के जीवन में दूसरी महत्वपूर्ण घटना - मनुस्मृति का प्रतिकात्मक दहन। 12 दिसंबर 1927 को मनस्मृति का दहन किया गया। ''कुछ अछूत साधुओं के हाथों से विधिवत् उसे आग के हवाले किया गया। 'मनुस्मृति' दहन की इस घटना से आंबेडकरजी ने सारे संसार को बता दिया कि इस देश में अब विषमता का कानून नहीं चलेगा।''[2] इससे प्रस्थापित सनातनियों जुल्म, अत्याचार, शोषण और घातक रुढियों पर प्रहार हुआ। इस कृति से दलितों में मुक्त जीवन की अनुभूति की चेतना जागृत हुई। इन्होंने काळाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, महाड सत्याग्रह, रामकृष्ण प्रवेश सत्याग्रह आदि के माध्यम से हिंदू समाज व्यवस्था पर प्रहार किया। (साहित्य समाज का दर्पण होता है और समाज की नब्ज साहित्यकार। जो राष्ट्र या समाज जितना सुसंस्कृत होगा, उसका साहित्य उतना सुसंस्कृत होगा। साहित्यकार अपनी रचना में समाज के रंग-रुप, सुख्र-दुख्र:, रहन-सहन, भाषा को चित्रित करता है। आज साहित्य में दलितों की वर्तमान स्थिति का अत्यंत सूक्ष्मता एवं स्पष्टता से चित्रण किया है। बहुत समय से साहित्य में हाशिए पर रहा दलित-साहित्य केंद्रबिंदू बन गया है। स्वाधीनता के बाद दलितों की समस्याओं पर अनेक कवियों एवं साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किये। किसी ने भेदभाव को दूर करने के लिए महात्मा बुद्ध का बहुत बडा योगदान माना तो किसी ने संत रविदास, बाबा जगजीवनराम, डॉ बाबासाहेब अंबेडकर का महत्व स्वीकार किया तो किसी ने महात्मा गांधी से प्रभावित होकर अस्पृश्यता को दूर करने का अभियान चलाया।)

निराला, सुमित्रानंदन पंत, दिनकर, नागार्जून, मुक्तिबोध, धूमिल, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगुडी, ठाकूर प्रसाद राही, विनय दुबे, राजेश गोली, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम आदि कवियों ने दलितों का नग्न यथार्थ चित्रण किया। यह सामाजिक क्रांति एवं चेतना का ही प्रमाण है। इन सभी के साहित्य के परिणामस्वरुप दलितों में जागृति पैदा हुई और देश के

1. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, प्रतिभा प्रतिष्ठान: प्रथम संस्करण 2000), पृ 268
2. लक्ष्मण हर्दवाणी, समता के समर्थक आंबेडकर (नैशनल बुक ट्रस्ट इंडिया: पाँचवा संस्करण 2005), पृ. 32

लोगों में बुराई को समूल नष्ट करने की भावना उत्पन्न हुई । इस प्रकार दलितों को केंद्र में रखकर साहित्य लिखा गया । जिससे दलितों में चेतना उत्पन्न हो रही है ।

स्वाधीनता के पश्चात दलितों की समस्याओं पर अनेक कवियों एवं साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किये । किसी ने भेदभाव को दूर करने की लिए महात्मा बुद्ध का बहुत बडा योगदान माना तो किसी ने संत रविदास, बाबा जगजीवनराम, डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी का महत्व स्वीकार किया । तो किसी ने महात्मा गांधी से प्रभावित होकर अस्पृश्यता को दूर करने का अभियान चलाया ।

2.7 दलित साहित्य की विशेषताएँ -

2 7.1 दलित साहित्य नकार का साहित्य है -

दलित साहित्य के बारे में यह स्थापित हो चुका है कि यह नकार का साहित्य है । जाहिर है कि यह नकार परंपरागत मूल्यों मान्यताओं और स्थापनाओं के प्रति है । यह साहित्य भगवान, भाग्य, पुर्वजन्म का फल, विकृत रुढियाँ, हिंदूत्ववाद का आडंबर, दो मापदंडो वाली भारतीय संस्कृति और उसकी उच्च जातियों के अहम्, दलितों को असुर राक्षस कहकर अपमानित करने की योजनाबध्द ऐतिहासिक साजिश तथा शुद्रों के शास्त्रसम्मत परंपरागत शोषण का नकार है । मोहनदास नैमिशरायजी ने तो ईश्वर के होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया है । -

''ईश्वर की मौत
उस पल होती है
जब मेरे भीतर उठता है सवाल
ईश्वर का जन्म
किस मां की कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन?.......''[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकिजी हिंदूत्ववादियों को उन्हीं अद्वैतवाद का उदाहरण देकर पूछते हैं -

'' चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है

---

1. मोहनदास नैमिशराय, आग और आंदोलन (नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2000), पृ. 44

मैं नहीं जानता

शायद आप जानते हो ...... ।''[1]

दलित साहित्य का उद्देश्य सिर्फ 'नकार के लिए नकार' या 'विरोध के लिए विरोध' मात्र नहीं है बल्कि समता, स्वातंत्र्य, बंधूता, न्याय आदि मूल्यों की स्थापना करना है । दलित साहित्य के केंद्र में हमेशा आम आदमी रहा है । मनुष्य के दु:ख, उसका शोषण, उत्पीडन और संत्रास, उसका संघर्ष और जिजीविषा दलित साहित्य का केंद्रीय विषय है ।

2 7.2 वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध -

प्राचिन काल से दलित व्यक्ति वर्णव्यवस्था से उपजे जाति-भेद का विरोध करता आ रहा है । अगर कोई व्यक्ति दलित परिवार में पैदा होता है तो उसमें उसका क्या दोष है ? दोष तो प्रस्थापित वर्णव्यवस्था का है जिसने समाज के उच्च स्तर पर अपनी गरिमा बनाये रखने के कारण वर्णव्यवस्था का निर्माण कर विभिन्न जातियों का निर्माण किया । दलित जातियों को हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझा जाता रहा है । उनको छूने से उँची जातियों के लोगों का धर्म भ्रष्ट हो जाता है । यहाँ तक की उनकी परछाइयों से भी बचने का प्रावधान है । इसीकारण उनकी बस्तीयाँ नगर से बाहर रहती थी और उन्हें सभी सुख सुविधाओं से वंचित रखा जाता था । ''भारत में जातिप्रथा का विकास अन्य संस्कृतियों के मिश्रण के बहुत बाद में हुआ । जातिप्रथा एक ही प्रजाति के लोगों का सामाजिक विभाजन है । जहाँ तक शारीरिक क्षमता संबंध है उसमें हिंदू जाति सबसे घटिया किस्म की है । वह छोटे आकार के बौनों की जाति है जिसका शारीरिक विकास अवरुध्द है । इतना ही नहीं जातिप्रथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जो हिंदू समाज के ऐसे विकृत समुदाय की झूठी शान और स्वार्थ की प्रतीक है, जो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार इतने समृद्ध थे की उन्होंने इस जाति प्रथा को प्रचलित किया और इस प्रथा को अपनी जोर-जबरदस्ती के बल पर अपने से निचले तब के लोगों पर लागू किया । जातिप्रथा न नस्ल में सुधार करती है न आर्थिक व्यवस्था में सुधार ।''[2] इस प्रकार अस्पृश्यता, वर्णव्यवस्था की जड़े बहुत मजबूत थी ।

आजादी के इतने वर्षों बाद भी और अनेक नये कानून और विधायकों को पारित होने के बावजूद

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : प्रथम संस्करण 1997), पृ. 13
2. कृष्णदत्त पालीवाल, दलित साहित्य बुनियादी सरोकर (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2009), पृ.48

भी स्थिति में बहुत ज्यादा बदलाव या परिवर्तन नहीं आया। शहरों और गांव दोनों जगहों में अस्पृश्यता बनी हुई है। हरिनारायण ठाकूर लिखते हैं, ''दलितों के आज तक के आंदोलन और मुख्यधारा के आंदोलन में मुख्य अंतर यह है कि मुख्यधारा जाति और वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखते हुए ही इसमें सुधार करना चाहती है जबकि दलित चेतना सामाजिक संरचना में अमूल परिवर्तन करना चाहती है।''[1] आज दलित व्यक्ति या समाज शिक्षित है, तो वह स्वाभाविक रुप से इस वर्णव्यवस्था का विरोध करेगा। ''आज मुस्लिम संप्रदाय के लोग एक है क्योंकि उनमें वर्णव्यवस्था जैसी कोई जाति विभक्तियाँ नहीं है।''[2]

2 7.3 दलित साहित्य समाज सापेक्ष है

दलित साहित्य समाज का दर्पण है अर्थात समाज में जैसी स्थितियाँ या परिस्थितियाँ दर्शनीय हैं इसी का यथार्थ चित्रण हम दलित साहित्य में देख सकते हैं, इसलिए दलित साहित्य समाज का दर्पण है। आज साहित्य में जितनी भी रचनाएँ लिखी हैं वे ज्यादातर सवर्ण लेखकों द्‌वारा लिखी गई हैं। प्राचीन या मध्ययुगीन काल में कवि राजश्रित होने के कारण जो भी रचनाये लिखी वे सभी या तो यश प्राप्त करने के लिए या व्यावसायिक रुप में धन प्राप्त करने के लिए लिखी गई लेकिन जब दलित समाज शिक्षित हुआ, तब उसने लेखनी चलाई, जिससे साहित्य में एक आंदोलन आ गया। दलित समाज को साहित्य के माध्यम से एक व्यापक मंच मिला। जिसके माध्यम से दलितों को समाजव्यवस्था में जो स्थान दिया था उसे दर्शाने के लिए अवसर मिला। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकिजी लिखते है - ''दलित साहित्य की व्यापकता इसी में है कि यह अन्याय, अत्याचार, सामाजिक विषमताओं, शोषण, दमन के विरुध्द एक दीवार की तरह सिद्‌ध हो जाए, बेहतर समाज की परिकल्पना को साकार करने के लिए। तभी उसकी सामाजिक दायित्व और वैचारिक प्रतिबध्दता सिद्‌ध होगी।''[3] मानवता का झंडा लेकर चलनेवाला यह देश सदा निम्न वर्ग पर अमानवीय व्यवहार करता आया है। इस प्रकार दलित साहित्य

---

1. हरिनारायण ठाकूर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र (दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ: संस्करण 2009), पृ. 382
2. रमेश कुमार, बस्स! बहुत हो चुका-संवेदना एवं शिल्प का अध्ययन (दिल्ली, गौतम बुक सेंटर: प्रथम संस्करण 2007), पृ. 34
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2001), पृ.20

एक समाज-सापेक्ष साहित्य है जो समाज की गतिविधियों को स्वतंत्र रुप से लोगों के सामने चित्रित कर सकता है और अपनी पहचान बढा रहा है।

2 7.4 दलित साहित्य समानता का आकांक्षी साहित्य है

दलित साहित्य में समता का भाव है, इसकी अनुभूति हमें होती है। दलित साहित्य में यथास्थिति का वास्तववादी चित्रण किया गया है। दलित साहित्य जातीय समाज व्यवस्था को नकारता है, वह समाज में वर्णो को कोई स्थान नहीं देता वह मानवता को अनिवार्य मानता है। समता को स्थापित करने के लिए सभी दलित कवि प्रयास कर रहे हैं। जाहिर है कि दलित साहित्य राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समानता चाहता है। परिणामस्वरुप राजनीति में साझेदारी के लिए भी साहित्य लिखा जा रहा है। चाहे वह आरक्षण का मुद्दा हो, रोजगार का हो या आर्थिक समृद्धि के समान अवसर पाने का। आरक्षण और समानता की हिस्सेदारी के मुद्दे पर कटाक्ष करते हुए जयप्रकाश कदर्म कहते हैं -

‘‘तुम्हारा आरक्षण उचित है
और मेरा अनुचित
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रुप से हिस्सेदारी
शासन प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जुती गांढने
और झाडू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता।’’[1]

वस्तुतः जनतांत्रिक देश में समता, बंधूता, स्वतंत्रता पर आधारित संविधान होने के बावजूद सामंतवादी एवं पूँजिपति वर्ग के कारण दलितों को अधिकारों एवं सुविधाओं से वंचित रहना पडा, यही कारण है कि दलित साहित्य की उत्पत्ति हुई। दलित साहित्य का भाव समतावादी है जिसमें सांमजस्य का अच्छा स्वरुप देखने मिलता है।

---

1. जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं (दिल्ली, विकल्प प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1996), पृ. 14-15

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

2 7.5 दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन की उपज है -

परिवर्तन की गति शाश्वत है। आधुनिक भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हुआ है। एक ओर भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों ने दलित समुदाय को प्रभावित किया, तो दुसरी ओर दलित समुदाय ने भी अपने उत्थान हेतु अनेक आंदोलनों द्वारा अपने समाज के परिवर्तन के प्रयास किये। आधुनिक काल में दलित, पिछड़े और स्त्रियों के नाम पर बहुत आंदोलन हुए। इस संदर्भ में डॉ जीतूभाई मकवाणा कहते हैं - ''दलित साहित्य का आंदोलन न केवल सामाजिक परिवर्तन का आंदोलन है अपितु वह सदियों से समाज में प्रचलित पंरपरा संस्कृत मूल्यों के विरुध्द एक युध्द है।''[1] दलित साहित्य मानसिकता बदलने का काम बखूबी से कर सकता है। साहित्य मानव-मानव के बीच की नफरत, घृणा एवं भेदभाव की दीवारों को ध्वस्त कर समानता एवं बंधुता पर आधारित रिश्तों को मधुर बना सकता है। दलित साहित्य इसी चुनौती को स्वीकारता है, मनुष्य-मनुष्य में जाति, वर्ण, वर्ग, लिंग और भाषा के भेद को मिटाने और हर दोहरे-तिहरे मानदंडो वाली मानसिकता को बदलने की ताकत अपनाये हुए है। रमणिका गुप्ता कहती हैं - ''जनवादी प्रगतिवादी साहित्य की तरह दलित साहित्य भी दरअसल मानसिकता बदलनेवाला साहित्य है।''[2] दलित साहित्य मानव की बराबरी और सामाजीक न्याय की मांग करनेवाला साहित्य है।

2 7.6 दलित साहित्य में विद्रोह की अवधारणा -

दलित साहित्य में विद्रोह दलितों की वेदना से पैदा हुआ है यह विद्रोह पंरपरागत व्यवस्था के अमानवीय अत्याचारों एवं शोषण के खिलाफ है। जिस प्रकार दलित साहित्य में वेदना का स्वर सामाजिक स्वरुप का है, वैसे ही विद्रोह भी सामाजिक और समूह स्वरुप का है। शरणकुमार लिंबाले कहते हैं - ''वेदना और नकार के बाद की अवस्था 'विद्रोह' है। मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए। इस चेतना से इस विद्रोह का जन्म हुआ है। निरंकुश वेदना के गर्भ से जन्मा विस्फोटक नकार और भेदक विद्रोह प्रपात जैसा है। उसका स्वरुप आक्रमक है; वह उदंड और बागी रुख

---

1. डॉ. जीतूभाई मकवाणा, समकालीन हिंदी दलित साहित्य (नडीयाद, दर्पण प्रकाशन:संस्करण 2004), पृ. 9
2. डॉ. रमणिका गुप्ता, दलित चेतना: साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार (दिल्ली, समीक्षा पब्लिकेशन: संस्करण 2004), पृ. 34

अख्तियार करता है।''[1] दलित साहित्य का आक्रोश मूक है वह तब तक मूक है जब तक उसे कोई छू न ले। दलित साहित्य लावा की तरह है एक बार निकला तो परिवर्तन ही परिवर्तन की गूँज होगी।

2 7.7 दलित साहित्य में वेदना -

हजारों वर्षों से दलितों को अन्याय और अत्याचार सहना पडा है। दलितों को सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया है। दलित इस व्यवस्था के विरुध्द बगावत न करें इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है ऐसा सिध्दान्त प्रतिपादित किया गया। ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, जयप्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह 'बेचैन', गंगाराम परमार, मलखान सिंह तथा सुशिला टाकभौरे आदि साहित्यकारों ने दलितों की संवेदना को व्यक्त किया। ओमप्रकाश वाल्मीकिजी की रचनाओं में जगह जगह पर वेदना की अनुभूति अभिव्यक्त हुई है -

''कभी नहीं मांगी बलिश्त भर जगह
नहीं मांगा आधा राज भी
मांगा है सिर्फ न्याय ...
थोडा सा बचपन
थोडा-सा अपनापन
जब-जब भी कुछ मांगा
वे गोलबंद होकर टूट पड़े
मैं आवाक !''[2]

वाल्मीकिजी ने अपने और पूरखों के सपनों के व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से पूरे समाज में प्रवेश किया है

''बस्तियों से खदेड़े गए ओ मेरे पुरखो
तुम चुप रहे उन रातों में
जब तुम्हें प्रेम करना था ...

---

1. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, प्रतिभा प्रतिष्ठान:प्रथम संस्करण 2000), पृ.36-37
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 61

तुम तलाशते रहे मुट्ठी भर चावल

सपने गिरवी रख कर ...... ।''[1]

इस प्रकार दलित साहित्य में व्यक्त संवेदना व्यक्तिगत संवेदना और सामाजिक संवेदना इन दो रुपों में है । दलित साहित्य को वेदना का साहित्य कहे तो गलत नहीं होगा ।

2 7.8 आक्रोश प्रतिशोध -

दलित कविताओं और कहानियों में प्रतिशोध की प्रवृत्ति रही है । यह प्रवृत्ति मानव स्वभाव के फलस्वरुप है, दलित होने के कारण नहीं । वर्ग-क्रांति के समर्थक साहित्यकारों ने पूँजीपति और सामंतवाद के खिलाफ प्रतिशोधात्मक साहित्य लिखा । दरअसल दलित साहित्य इसकी पुष्टि करता है । ब्राह्मणवाद को अपनी आस्था और विश्वास का प्रतिक मानने और बताने वाला सवर्ण समाज दलितों के शोषण और पीडा के एहसासों से परिचित नहीं है । उन्होंने खुद दलितों की वेदना को नहीं सहा । सहज ही दलितों मे जो आक्रोश-प्रतिशोध की भावना है वह दलितों पर किये जाने वाले अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ है । इस संदर्भ में डॉ शरण कुमार लिंबाले कहते हैं, ''दलित साहित्य की यह कहकर आलोचना हुई है कि यह आक्रोशपूर्ण है और यह आक्रोश छाती पीटने जैसा है । दरअसल दलित लेखकों का यह आक्रोश 'आक्रोश' नहीं बल्कि बहुत वर्षों की चिढ है । यह आक्रोश वेदना, विद्रोह और क्रोध की अभिव्यक्ति है । दलित साहित्य में व्यक्त हुआ क्रोध, साहित्य का 'सहज भाव' है ।''[2] स्पष्ट है कि दलित साहित्य मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना करता है साथ ही वह आक्रोशपूर्ण एवं प्रतिशोध की भावना से व्याप्त है ।

2 7.9 दलित साहित्य संघर्ष से उपजा साहित्य है -

दलित शब्द एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ होता है 'जिसका दलन या दमन हुआ है', 'उत्पीडित', 'शोषित', 'सताया हुआ', 'उपेक्षित', 'घृणीत', 'रौंदा हुआ', 'वंचित', 'कुचला हुआ' आदि । दलित साहित्य के केंद्र में मानव है जो शोषित है, दमित है, पीड़ित है । डॉ अंबेडकरजी ने महात्मा

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 14-15

2. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली,प्रतिभा प्रतिष्ठान:प्रथम संस्करण 2000), पृ. 55-56

ज्योतिबा फुले, शाहु महाराजजी को आदर्श मानकर दलितों को प्रेरित किया। फलस्वरुप दलितों ने पंरपरागत हिंदू-धर्म के खिलाफ संघर्ष किया ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में यह संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है -

''नहीं मिला दूध उसे
सफेद काली गाय का
नहीं खाया मक्खन कभी
नहीं सोया गद्देदार बिस्तर पर
लगातार लडा है वह
बेहया मौसम से''[1]

युगों से दलित हाशिए पर था। दलित कवियों एवं साहित्यकारों के प्रयास से वह केंद्र में आया। जाहिर है कि दलित साहित्य का संघर्ष प्रस्थापित हिंदू धर्म एवं उसके मूल्य, वर्ण-जाति व्यवस्था, उसका शास्त्र और साहित्य, उनके रीति-रिवाज, परंपरा, भाषा आदि से है। परिणामस्वरुप सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन हुआ। दलित साहित्य ने अपनी विशेष पहचान बनाई। दलित साहित्य संघर्ष का साहित्य है और यह संघर्ष निरंतर शुरु रहेगा जब तक उसे मानव बनकर जीने नहीं दिया जाता।

2 7.10 दलित साहित्य में अनुभव -

दलित साहित्य में अभिव्यक्त अनुभव यथार्थ की कसौटी पर उतरता है। यह अनुभव जाति-विशेष के हैं। जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय आदि दलित साहित्यकारों ने जैसा जीवन जीया, भोगा और देखा है वैसे ही यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं मे व्यक्त हुआ है। वस्तुत: स्वयं दलित रचनाकार ही अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के साथ यथार्थवादी साहित्य की रचना कर सकता है। लेखक का यह अनुभव एक व्यक्ति का होते हुए भी पूरी जाति का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ शरण कुमार लिंबालेजी कहते हैं - ''दलित लेखकों का आग्रह इस पर है कि मैंने जो जीवन जिया, भोगा और देखा है, वही मैंने साहित्य में व्यक्त किया है। दलित साहित्य में अनुभव 'स्वतंत्रता की आकांक्षा

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 20

से'व्यक्त होने के कारण उसका स्वरुप 'मैं' होने की अपेक्षा 'हम' जैसा है। इस अनुभव का दलितों के जीवन से जुडाव नकारा नहीं जा सकता। दलित साहित्य में अनुभव, वेदना और विद्रोह के रसायन से तैयार होता है। इसमें दलित चेतना की अहम भूमिका है।''[1] दलित साहित्य में अनुभवों की यथार्थ अभिव्यक्ति है। अधिकांश गैर दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य के प्रति सहानुभूतिपरक दृष्टि रखी है। इसमें राजेंद्र यादव, रमणिका गुप्ता, कमलेश्वर, देवेंद्र चौबे, मैनेजर पांडे, नामवर सिंह, रजनी कोठारी, अभयकुमार दूबे, डॉ हरिनारायण ठाकुर, स्वदेश दिपक आदि गैर-दलित लेखकों और विचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं। दलित साहित्यकार गैर-दलित साहित्यकारों की तुलना में दलितों की वेदनाओं, यातनाओं की अभिव्यक्ति करने में अधिक सफल हुए हैं।

2 7.11 स्त्रियों के सम्मान और अधिकार का पक्षधर -

स्वाधीनता के पश्चात भी भारतीय समाज में स्त्रियों को हीन माना जाता रहा। प्राचीन काल में समाज को वर्णों में अच्छा स्थान नहीं मिला। मनुस्मृति में स्त्रियों एवं दलितों को हीन माना गया था। कडे-से-कडे बंधन डाल दिये थे परंतु डॉ. बाबासाहेब अंबेडकरजी ने मनुस्मृति का प्रतिकात्मक दहन करके सनातनियों को जुल्म, जबरदस्ती, अत्याचार से मुक्त जीवन की अनुभूति के लिए चेतना जागृत की। परिणामस्वरुप दलित साहित्य में स्त्री-सम्मान और अधिकारों की चर्चा होने लगी। सदियों से ब्राह्मणवाद ने स्त्रियों के सम्मान और अधिकार को कुचलकर रखा है। स्त्रियों को जन्म से मृत्यु तक ब्राह्मणवाद ने न सुख से जीने दिया, न शांति से मरने दिया। सनातनी साहित्य स्त्रियों के विरुद्ध इन हरकातों का पीड़ित दस्तावेज है। नारी उत्पीड़न शोषण के बारे में राम अहुजा का कहना है कि ''भारतीय समाज में महिलाएँ इतने लंबे काल से अपमान, यातना और शोषण का शिकार रही हैं, जितने काल के हमारे पास सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं।''[2] दलित नारी इसका अपवाद नहीं है। दलित नारी का भयंकर मात्रा में शोषण हो रहा है।

2 7.12 दलित साहित्य आम आदमी के जीवन का दस्तावेज है -

समाज में दो प्रकार के लोग रहते है - उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। दलित साहित्य के केंद्र मे हमेशा

---

1. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का समाजशास्त्र (नई दिल्ली,प्रतिभा प्रतिष्ठान:प्रथम संस्करण 2000), पृ. 55-56
2. राम अहुजा, सामाजिक समस्याएँ (जयपुर, रावत पब्लिकेशन: प्रथम संस्करण 1994), पृ. 227

निम्न वर्ग ही रहा है जो पीड़ित, शोषित है। प्राचीन काल में साहित्य राजाश्रित होने के कारण उच्चकुलोत्पन्न नायक और नायिकाओं को चित्रित और प्रंशसित करता रहा है। ब्राह्मणवादी साहित्य में आम आदमी के दु:ख दर्द, सुख-सम्मान, आवश्यकता और अनुभूति को कोई स्थान नहीं मिला। सामाजिक परिवर्तन में हाशिए पर रहे आम आदमी को दलित साहित्य ने केंद्र में लाया। अब दलित साहित्य की परिधि में न राजा है, न उच्च कुलोत्पन्न महापुरुष। आज दलित साहित्य आम आदमी का जीवन दर्पण बन गया है। शोषित, पीडित, दीन-हीन आम जनता ही दलित साहित्य का केंद्रबिंदू रहा है।

2 7.13 दलित साहित्य विज्ञान और विकास का पक्षधर है -

ब्राह्मणवादी साहित्य में किसान की जगह भगवान और विकास की जगह सनातन ने ले ली थी दलित साहित्य भगवान तथा कर्मकाण्ड का विरोध करता है। दलित साहित्य का कहना है कि कर्मकाण्ड में फसा व्यक्ति स्वयं का विकास नहीं कर पाता। शिवाजी श्रीवास्तव लिखते है, ''दलित साहित्य समता, न्याय, लोकतंत्र, बंधुता और विज्ञान सम्मत बातों का पक्षधर है। इसमें भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, पाखंड, मूर्तिपूजा, स्वर्ग-नरक की अवधारणा को नकार दिया गया है। यह रंगभेद, लिंगभेद, वर्ण और जातिभेद विरोधी है।''[1] दलित साहित्य न भगवान को मानता है न सनातन पाखण्ड को उसका मानना है क्षण-क्षण परिवर्तन के सिध्दान्त पर दुनिया चल रही है। ''दलित साहित्य धम्मचक्र परिवर्तनाय की वकालय करता है पूरी निष्ठा से मान्यता देता है। दलित साहित्य पूर्ण विकासवादी मान्यताओं का ध्वजावाहक है। पुरातन पवित्रम की मान्यता को दलित साहित्य नकारता है, विकासवादी सिध्दान्त को स्वीकारता है''[2]

2 7.14 दलित साहित्य की भाषा

दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। जो भाषा दलितों की पीड़ा, व्यथा, अपमान का सही और यथार्थ चित्रण कर सके। यह भाषा दलितों की बोली भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न मानेवाली भाषा है।

---

1. शिवाजी श्रीवास्तव, 'समकालीन कथा साहित्य में दलित मुक्ति के प्रश्न', मधुमती, उमराव सालोदिया, संपा., (उदयपुर, राजस्थान साहित्य अकादमी: अप्रैल-मई 2010), पृ. 34
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, (दिल्ली,राधाकृष्ण प्रकाशन:प्रथम संस्करण 2001), पृ.49

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने भाषा के संदर्भ में कहा है - "दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है, जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी हैं।"[1] दलित साहित्य में दलित लेखकों के अनुभव की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपने बस्तियों की भाषा समीप लगती है। दलितों को शिक्षा की सुविधा प्राप्त होने के कारण अब उनकी भाषा में कुछ-कुछ परिवर्तन एवं सुधार आ रहा है।

2 7.15 मिथक

दलित साहित्यकार पौराणिक मिथक को तोडकर शास्त्रीय प्रतीकों को नकारते हुए उनके सच को उजागर करते हैं। दलित साहित्यकारों ने सभी विधाओं में पुराणे मिथकों को तोडकर नया अर्थ देने की कोशिश की है। सवर्णो के जातीय अह्म का गौरव करने के लिए गढे गए मिथकों के तिलस्म को तोडकर नये अर्थो में प्रयोग किया है। ये मिथक नये समाज के निर्माण में सहायक हो रहे हैं जो भारतीय मानसिकता की जडता और कुष्ठा को नष्ट कर देती है। हरिनारायण ठाकूर कहते हैं - "दलित साहित्य पारम्पारिक मिथक, मान्यता और आदर्शो से भिन्न एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ रहा है जो अधिक मानवीय और अधिक यथार्थपूर्ण है।"[2] हिंदी दलित साहित्य में कंवल भारती, जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि लेखकों की कविताओं में पुराणे मिथकों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। इन कवियों ने ऐतिहासिक, पौराणिक मिथकों को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। साथ ही मिथकों के द्वारा दलित जीवन की विसंगतियों और सामाजिक संदर्भो की वास्तविकता को रेखांकित किया है। दलित साहित्य ने पांरपारिक मान्यताओं और आदर्शों से भिन्न रास्ता चुनकर नये मिथकों का प्रयोग किया है।

2 7.16 प्रतिमान-प्रतिक और बिम्ब

दलित लेखकों ने अपने साहित्य में अनेक प्रतीकों एवं बिम्बों का प्रयोग किया है। अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिक एवं बिम्बों का होना अनिवार्य है। दलित साहित्य में अन्य कविताओं की भाँति काल्पनिक बिम्ब-प्रतिबिम्ब, प्रतिक और मिथक का आग्रह नहीं रहता। बल्कि सच, कटू यथार्थ, भोगा हुआ यथार्थ होता है। दलित साहित्य में प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग समाज की पीडा बेबसी, उत्पीड़न और शोषण से उपजे आक्रोश-प्रतिशोध सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए किया गया

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, (दिल्ली,राधाकृष्ण प्रकाशन:प्रथम संस्करण 2001), पृ.81
2. हरिनारायण ठाकूर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र (दिल्ली,भारतीय ज्ञानपीठ:प्रथम संस्करण2009), पृ.123

है । डॉ शरणकुमार लिम्बाले कहते हैं - "दलित कविता में प्रतिमान और प्रतीकों का एक विशिष्ट रुप देखने को मिलता है । हिंदूओं के पौराणिक साहित्य के संबंध में दलित लेखकों ने कटु प्रतिक्रिया व्यक्त की है । महाकाव्यों में निम्न वर्ग के लोग प्राकृत भाषा का प्रयोग करते दिखाये गये हैं । जिस गीता में चतुवर्ण्य का समर्थन है ऐसा महाभारत हमें वंदनीय नहीं लगता ऐसी दलित लेखकों की सोच है ।"[1] दलित साहित्य में विशेषकर कविता में प्रतिमान, प्रतीकों एवं बिम्बों का एक विशिष्ट रुप देखने मिलता है जिसमें पुराने प्रवृत्ति को त्यागकर नये ढंग से प्रस्तुत किये हैं ।

2 7.17 दलित साहित्य पर बौध्द धर्म का प्रभाव

दलित समाज स्वयं को हिंदू धर्म अंग का घटक नहीं मानता । हिंदू व्यवस्था को वह अपने प्रतिकूल और दमघोटू मानता है । वह हिंदू धर्म से किसी भी रुप में जुडा रहना नहीं चाहता, बल्कि उससे मुक्त होने के लिए बुरी तरह व्याकुल है । इसके लिए दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई एक मनुस्मृति का दहन किया गया और दूसरी दलितों द्वारा व्यापक स्तर पर बौध्द धर्म में दीक्षित होना । इन दो घटनाओं से पूरे देश और दुनिया में हलचल पैदा हुई । परिणामस्वरुप डॉ. बाबासाहेब अंबेडकरजी के अनुयायी विशाल दलित समाज का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हुआ । अधिकांश दलित लेखक इसी वर्ग के हैं इसलिए उनके साहित्य पर भी बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।"साहित्य व्यक्ति की रचनात्मक अभिव्यक्ति होती हैं । उसमें हित का भाव बाद में जुडता है । अर्थात व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिवेश का प्रभाव उसके द्वारा रचित साहित्य पर पडता है । दलित समाज सामाजिक, राजनैतिक ही नहीं धार्मिक, सांस्कृतिक रुप से भी विभक्त है और चूँकि सभी वर्गो, मतवादों के लोग आज दलित साहित्य के सृजन में लगे हैं इसलिए उनके मतों का प्रभाव उनके द्वारा दलित साहित्य पर दिखाई देता है ।"[2] इस प्रकार दलित साहित्य पर बौध्द धर्म एवं अंबेडकरवाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन का पक्षधर है । सामाजिक परिवर्तन ही दलित साहित्य ही पहचान है ।

---

1. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, प्रतिभा प्रतिष्ठान:प्रथम संस्करण 2000), पृ.42
2. .... वही ....,पृ. 53

सारांशत: अतीत का सच्चा इतिहास वर्तमान का समभाव, समबोध, समकक्ष प्राप्त करने का सद्प्रयास और मानवता का नाम ही दलित साहित्य है।

निष्कर्ष -

दलित शब्द का अर्थ जिसका दलन हुआ है, शोषण हुआ है माना है। भारतीय समाज व्यवस्था के अंतर्गत जिन्हें अस्पृश्य माना गया है वे सभी दलित हैं। दलित समाज के अंतर्गत अस्पृश्य हरिजन, डिस्प्रेस्ड क्लासेस आदि आते हैं। 'दलित'शब्द का अर्थ एवं उसकी व्यापकता तथा दलित शब्द के आशय को स्पष्ट करते हुए दिखाता है। अन्याय और अत्याचार की स्थिति का दर्शन करता है। दलित शब्द हिंदू समाज व्यवस्था को जातिव्यवस्था के शिकंजे में फंसता जा रहा है। दलित समाज की सामाजिक स्थिति उच्चवर्ग द्‌वारा शोषित अपमानित, उपेक्षित तथा पीडित परिलक्षित होती है। वर्णव्यवस्था के कारण सामाजिक स्थिति भयावह है। दलित समाज के साथ अमानवीय व्यवहार होने के कारण उनका विकास नहीं हो रहा। आज भी पूँजीपति, महाजन, सेठ, साहूकार, प्रधान, मुंशी तथा भ्रष्ट अफसरों के द्‌वारा दलितों का आर्थिक तथा शारीरिक शोषण हो रहा है।

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों का स्थान निम्न उपेक्षित ही रहा है। देश की एकता, अखंडता के लिए जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, भाषावाद आड आते हैं। दलित साहित्य समानता की प्रतिस्थापना करता है। आज डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी के प्रयत्नों से संवैधनिक अधिकारों के कारण दलित जीवन में सुधार आ रहा है। वर्तमान काल में दलित संगठित होकर आवाज उठा रहे हैं। आजादी के पूर्व और आजादी के पश्चात दलितों की स्थिति में काफी मात्रा में परिवर्तन एवं विकास नजर आ रहा है। दलित समाज को विकास के चरमोंत्कर्ष पर पहूँचना है तो दलितों में चेतना का जागना महत्वपूर्ण है। दलित शिक्षा हासिल करके सरकारी नौकरियों में उच्च पद पर विराजमान हो रहे हैं। दलितों में नये मानवीय मूल्यों के तत्वों की स्थापना हुई है। समाज व्यवस्था में अमूलाग्र परिवर्तन हो रहे हैं।

दलित साहित्य की विशेषताओं की चर्चा करते हुए उनपर लगे आरोंपों का खंडन किया गया है। वस्तुत: दलित साहित्य मनोरंजन या आनंद उठाने का साहित्य नहीं है। ये प्रतिबध्द, अनुबध्द, कटिबध्द, परिवर्तनगामी प्रवृत्तियों से भरा साहित्य है जो अतीत से नहीं वर्तमान से सीखता है और भविष्य को बनाने में विश्वास रखता है। दलितों को धर्म और उसके अंधविश्वासों से बचाने का प्रयास करता है साथ ही नये समाज का निर्माण करने के लिए नई विचारधारा का स्वीकार करता है।

हिंदी कविता में दलित जीवन का चित्रण करने का कार्य रैदास, कबीर तथा हिराडोम से शुरु हुआ। हिंदी दलित कविता ने जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था संस्कार आदि को तोडकर दलितों की पीडा, वेदना, यातनाओं को वाणी प्रदान की। दलित साहित्यकारों एवं कवियों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में विशेष योगदान दिया। दलित समाज में क्रांति एवं चेतना उत्पन्न करने का कार्य दलित साहित्यकारों ने किया। दलितों के विभिन्न स्थितियों और समस्याओं का यथार्थ चित्रण दलित साहित्य में मिलता है। अत: कहना सही होगा कि दलित साहित्य दलितों की प्रेरणा एवं विकास का महत्वपूर्ण केंद्रबिंदू है।

16599

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

तृतीय अध्याय

‘बस्स ! बहुत हो चुका’ काव्यसंग्रह में चित्रित

दलित चेतना

तृतीय अध्याय - 'बस्स ! बहुत हो चुका' काव्यसंग्रह में चित्रित दलित चेतना

प्रस्तावना -

आधुनिककालीन साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि का चित्रण हो रहा है। इसके साथ-साथ शोषित दलित और नारी को साहित्य का विषय बनाया जा रहा है। दलित सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। महात्मा ज्योतिराव फुले, छत्रपति शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जैसे महापुरुषों के कार्य के फलस्वरुप दलितों के जीवन में परिवर्तन आने लगा है। दलित समाज संगठित होकर अपने अधिकारों की मांग करने लगा है। आज दलितों में शिक्षा के सुअवसर के कारण दलित अपने अधिकारों की लडाई लढ रहे हैं। अत: दलित समाज पूँजीवादी हिंदू समाज व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष एवं विद्रोह करने लगा है।

भारत में प्राचीन काल से समाज व्यवस्था चार्तुवर्ण्य व्यवस्था में बटी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। शुद्र यानी दलित, इस चार्तुवर्ण व्यवस्था में शुद्रों पर अन्याय अत्याचार होते थे, उन्हें पशुतुल्य जीवन बीताना पडता था। उन्हें समाज से बहिष्कृत किया गया था। बहिष्कृत जीवन जीनेवाला दलित, शोषित, पीड़ित आज सामाजिक क्रांति की राह पर चल रहा है। आजादी की लड़ाई में राष्ट्रीय एकता के साथ बंधुता सामाजिकता पर बल दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने दलितों के सुधार हेतु कुछ विशेष प्रावधानों का प्रबंध किया। महात्मा ज्योतिबा फुले, शाहू महाराज तथा डॉ बाबासाहब अंबेडकर आदि महापुरुषों ने दलितों की खोई अस्मिता को पाने के लिए दलितों को चेतित करने का प्रयास किया। फलस्वरुप अंबेडकरजी के विचारों का तत्कालीन साहित्य और साहित्यकारों पर विशेष प्रभाव पडा। इसीकारण आज दलित चेतना का चित्रण तीव्र रुप से दिखाई देता है।

आज दलित पारंपारिक जीवन प्रणाली को त्यागकर समाज में परिवर्तन लाने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं। शिक्षा के माध्यम से समाज की उन्नति, विकास और रक्षा के लिए दलित सतत कार्यरत हो रहे हैं। दलितों में संगठन, दलित-जागरण, समानता, हक्क एवं अधिकारों की माँग आदि के रुप में चेतना दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि आज दलितों में अस्मिता का एहसास हो रहा है। वह जातिवादिता, रुढि-परंपरा, अंधविश्वास का विरोध करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित पढ़े-लिखे होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं। आज वह शिक्षा के माध्यम से समाज में बदलाव लाना चाहते हैं। संविधान के अनुसार दलितों की उन्नति के लिए प्रावधान बनाए गए हैं। ओमप्रकाश

वाल्मीकि उन दलित रचनाकारों में रहे, जिन्होंने दलित समाज का यथार्थ चित्रण किया। दलित समाज की समस्याओं को समझकर उन्हें बारीकी और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। उनके अनुसार "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित शोषित सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित घृणीत आदि"[1] दलित शब्द को लेकर साहित्य के क्षेत्र में काफी चर्चा चल रही है। हिंदू संस्कृति के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी दलित शब्द का उल्लेख मिलता है।

दलित साहित्य लेखन में एक विशिष्ट पहचान बनानेवालों में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का नाम अत्यंत आदर सहित लिया जाता है। उनका काव्यसंग्रह 'बस्स ! बहुत हो चुका' इसका प्रमाण है जो सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। ओमप्रकाश वाल्मीकिजी की कविताओं में जो आग है, वह बेवजह या बेमानी नहीं है उसमें अनुभव की चिंगारी है यही चिंगारी साहित्य में एक नए आंदोलन को जन्म देती है। यह कविताएँ साहित्य में नवीन क्रांति को जन्म देती हैं। यह कविताएँ साहित्य में पुनर्पाठ को आमंत्रित करती हैं जो आज के संदर्भ में बेहद जरुरी है। वाल्मीकिजी की कविताओं में परिवर्तन की गूँज नजर आती है, वे बदलाव के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं। इन कविताओं में दलितों को उठ खडे होने की प्रेरणा दिखाई देती है। कवि अपनी कविताओं से दलितों में बदलाव की अपेक्षा रखते हैं।

सुविधा के लिए प्रस्तुत अध्याय को हम निम्नलिखित रुप से देखेगें -

1. गुलामी के प्रति विद्रोह
2. रुढ़ि एवं परम्परा के प्रति विद्रोह
3. जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह
4. अंधश्रद्धा एवं धार्मिक पाखंडता के प्रति विद्रोह
5. दलितों की राजनीति का चित्रण
6. दलित नारी का चित्रण
7. दलित शिक्षा व्यवस्था का चित्रण
8. दलितों की आर्थिक स्थिति का चित्रण

3.1 गुलामी के प्रति विद्रोह

आजादी के पहले और आजादी के पश्चात के भारतीय समाज में बुनयादी परिवर्तन नहीं आया।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2000), पृ. 13

आजादी के पश्चात भी देश का एक वर्ग वैसा ही रहा जिसकी बुनियादी समस्याएँ पूरी न हो सकी। रोटी, कपड़ा मकान जैसी बुनियादी समस्याओं के लिए आम आदमी की जद्दोजहद जारी रही। जमीदारी प्रथा से किसानों का शोषण होता रहा। बालविवाह, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, स्त्री-पुरुष समानता आदि को ध्यान में रखकर समाजसुधारकों ने आंदोलन शुरु किये। जातिप्रथा के विरोध में भी आंदोलन प्रारंभ हुए और सामाजिक एकता स्थापित करने के प्रयास किया जाने लगे।

प्राचीन काल से दलितों को गुलाम बनाया गया। उनकी स्थिति का फायदा उठाकर नवाब, जमींदार जागीरदारों ने उनपर अन्याय अत्याचार किए। स्वातंत्र्योत्तर काल में इन अत्याचारों से तंग आकर दलित समाज विद्रोह करने लगा। दलितों में जागरुकता आने लगी। उच्च वर्ग सत्ता एवं धन के बल पर सामंतवादी व्यवस्था को बनाए रखना चाहता है और वह प्रयासरत है। भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। समाज में उँच-नीच, सवर्ण, दलित आदि कई भेद थे। उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है जब तक उच्च वर्ग की मानसिकता में बदल नहीं होता तब तक समाज परिवर्तन असंभव है। इक्कीसवी सदी में भी दलितों पर अन्याय अत्याचार हो रहे हैं। डॉ अर्जुन चव्हाण जी कहते हैं - ''जातीय व्यवस्था हमारे देशवासियों के खून में समा गई है।''[1] मनुस्मृति का दहन करके सालों बीत चुके परंतु आज भी समाज की मानसिकता में बदलाव नजर नहीं आ रहा।

प्रस्तुत कविता संग्रह में कवि ने सामंतवादी समाज के शोषकों के शोषण की तीव्रता को प्रकट किया है -

> ''पाला है भूखे बच्चों को
> बहला-फुसला कर
> इस इन्तजार में
> कि एक रोज बीत जायेंगे
> ये संताप भरे दिन
> टूटकर बिखर जायेंगे

---

1. डॉ. अर्जून चव्हाण, राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन (दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1995), पृ.101

आदिम भेडियों के दाँत''[1]

कवि आशा करता है कि आनेवाले समय में दलितों के बच्चे शोषित नहीं रहेंगे। अपने परिश्रम के बल पर वे तरक्की करेंगे। वे भूखे प्यासे बच्चे एक दिन शोषण की दीवारों को तोडकर बाहर आयेंगे। तभी इन बच्चों को मनुष्य रुप मिल पाएगा। कवि दलितों के बच्चों को इस शोषण को तोडने के लिए प्रेरित करते हैं। कवि दलितों को बहिष्कार नीति अपनाने के लिए कहते हैं -

''नहीं भरेंगे उनकी कोठियों और गोदाम
अनाज के बोरों से''[2]

दलित उच्च वर्ग के काम करना बंद करें तो वे एक दिन भी जीवनयापन नहीं कर सकेंगे। कवि उनके काम को बहिष्कृत करने कहते हैं। कवि कहते हैं दलितों की भाँति जीवनयापन करके देखो की उनकी वेदना कैसी है ?

''मैं जानता हूँ अच्छी तरह
एक दिन भी पानी न मिले यदि तुम्हें
उठा लेते हो
जमीन-आसमान सिर पर''[3]

कवि पूर्णत: आशावादी एवं परिवर्तनवादी हैं। कवि कल के बदलते दलित जीवन का चित्रण करते हैं -

''ये भूखे प्यासे बच्चे
बाहर आयेंगे एक दिन
बंद अँधेरी कोठरियों से
कच्ची माटी की गंध
साँसो में भरकर''[4]

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 20
2. ....वही ...., पृ. 21
3. ....वही ...., पृ. 56
4. ....वही ...., पृ. 21

कवि परिवर्तन की आस लगाये बैठे हैं। दलितों के बच्चे भूखे प्यासे नहीं रहेंगे, किसी भी प्रकार की यातनाओं से प्रताडित नहीं होगें। वे किसी की गुलामी स्वीकार नहीं करेंगे। ये भूखे प्यासे बच्चे एक दिन शोषण के जाल को तोडकर बाहर आयेंगे। कवि पूर्णत: आशावादी हैं कि एक ऐसे परिवर्तन के पश्चात ही दलितों को अपनी अस्मिता प्राप्त हो सकेगी।

इन कविताओं में वर्णव्यवस्था के खिलाफ आक्रोश भरा हुआ है। दलितों ने सदियों से यातनाओं को सहा है। लेकिन अब दलित उस कठोर दासता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। वह अब इन यातनाओं के विरोध में आक्रोश कर रहा है। उसने अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति पूर्ण संवेदना के साथ की है।

उदाहरण के रुप में ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

> ''गहरी पथरीली नदी में
> असंख्य मूक पीडाएँ
> कसमसा रही हैं
> मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई
> बस्स
> बहुत हो चुका चुप रहना''[1]

दलितों ने दु:ख पीडा यातनाओं को भोगा है। उपर्युक्त पंक्तियाँ इस त्रासदीपूर्ण जीवन को प्रकट करती हैं। कवि ने दलितों में उठनेवाले आक्रोश को अभिव्यक्त किया है। कवि खुद दलित जाति के होने के कारण उन्होंने अपने अनुभव को अभिव्यक्त किया है। इस यातना को भोगने से उनकी हथेलियाँ पसीने में डूब जाती हैं और उनकी आँखों में इतिहास की क्रूरता एवं अन्याय प्रतिबिंबित होने लगता है। कवि मानवीय समाज और भीड़ के बीच रहते हुए ऐतिहासिक अनुभवों से अपने को मुक्त नहीं कर पाते।

अत: कहना सही होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सवर्ण समाज दलितों को आजादी देना नहीं चाहता। उन्हें गुलाम बनाकर रखना चाहता है। दलितों की यातनाएँ तो दलित ही समझ सकता है।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 80

3.2 रुढि एवं परम्परा के प्रति विद्रोह -

प्राचीन काल से समाज का एक वर्ग विशेषता दलित वर्ग वैसा ही उपेक्षित रहा जैसे पहले था। शासक वर्ग ने दलितों का हर हाल में शोषण किया। इसी कारण दलितों की भावनाएँ कुंठित और क्षीण रही। लेकिन आज वे अपना अस्तित्व निर्माण कर रहे हैं। धर्मग्रंथ को आधार बनाकर ब्राह्मण दलितों को लूट रहे थे और अपने पेट पाल रहे थे। वे दलितों को सिर्फ गुलाम ही बनाकर रखना चाहते थे। लेकिन अब देश आजाद हो चुका है। वह इन अन्यायी रुढ़ी-परम्परा को पहचानने लगा है। वह उसका खुलेआम विरोध कर रहा है। आजादी के पश्चात शिक्षा के द्वार दलितों के लिए खोले गए। जिससे वह जागृत, सजग एवं चेतित हो गया। समाज परिवर्तन के लिए अपनी स्थितियों, धारणाओं और व्यवहार में परिवर्तन लाना आवश्यक है। स्वार्थ के कारण पूँजीपति दलित समाज और मजदूर वर्ग पर अन्याय अत्याचार करते रहे। लेकिन आज दलित समाज अपने ऊपर होनेवाले अन्याय अत्याचारों से परिचित हो रहा है। अपने अन्याय के खिलाफ संगठित होकर लड रहा है। संगठन एक ऐसी शक्ति है जो दुर्बलों को भी सबल बना देती है। विश्व का इतिहास साक्षी है कि बल पर लोग जेता-विजेता बने। डॉ रघुवीर सिंह कहते हैं ''किसी भी तरह के अन्याय का प्रतिकार करने के लिए संगठन सहयोग पहली आवश्यकता है। अछुतों की संगठन शक्ति भी उन्हें सत्ता में भागीदारी दे सकती है।''[1] यह आंदोलन सामाजिक चेतना का प्रतीक है जिसे दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया।

किसी भी अच्छी रचना की पहली शर्त होती है, उसमें समय की सच्चाई हो। इन कविताओं में जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था के प्रति विद्रोह है तो वहीं दूसरी ओर दलित वर्ग की महत्ता को स्थापित करने की ललक भी है -

''पेड़
तुम पेड़ उसी वक्त तक
पेड़ हो,
जब तक ये हरे पत्ते
तुम्हारे साथ हैं
पत्ते झरते ही

---

1. रघुवीर सिंह, डॉ अम्बेडकर और दलित चेतना (दिल्ली, कामना प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2000), पृ.75

पेड़ नहीं ठूठ कहलाओगे''[1]

आज भी हिंदू समाज व्यवस्था में ब्राह्मण-शुद्र भेदभाव किया जाता है परंतु आज के मायने में जो दलित हैं वे बौद्‌ध धर्म स्वीकार कर रहे हैं। तथकथित छोटी जाति में पैदा होकर भी अपने समाज को मुख्यधारा से जोडने की जो उत्कट जिजीविषा इन कविताओं में दिखाई देती है यही उनके जीवन की शक्ति है।

आज दलितों में चेतना जागृत हो चुकी है। अब वे अपने अधिकारों को समझने लगे हैं और अपने ऊपर होनेवाले शोषण का प्रतिरोध कर रहे हैं। शोषण की मार्मिकता स्पष्ट है -

''याद करों
उस माँ का चेहरा
जिसका बेटा सरेआम पीटा गया
निर्ममता से
जिसने चाही थी करनी दोस्ती
जंगल के फूलों
और नदी की लहरों से।''[2]

इन पंक्तियों में एक असहाय दलित माँ का अत्यंत मार्मिक एवं स्वाभाविक स्वरुप दर्शाया है जिसके सामने उसके बेटे को क्रूरता के साथ पीटा जा रहा है। उसकी गलती इतनी ही थी की उसने अपनी इच्छा से जीवन जीने की कोशिश की। वह उपनी इच्छा से फूलों और सहज नदी की लहरों को पसंद करने लगा था। अर्थात वह स्वातंत्र्य की अनुभूति ले रहा था।

कवि भारतीय समाज की विडम्बनाओं का सशक्त चित्रण करते हुए दलितों में चेतना लाने का प्रयास करते हैं। कवि सोचते हैं कि क्या यही भारतीय सामाजिक व्यवस्था है जिसमें एक माँ के सामने बड़े क्रूर रुप से उसके उपने बेटे को पीटा जा रहा है और वह बिलख-बलख कर रोने के अलावा कुछ भी कर पाने में असमर्थ है -

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 11
2. ....वही ...., पृ. 42

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

''याद करो उस माँ का चेहरा

जिसके सामने फेंक दिये हो

नोच-नोचकर

उसकी माँ के वस्त्र''[1]

ऐसी अमानवीय पीड़ा को शोषक वर्ग कभी नहीं महसूस कर सकता बेटे के सामने माँ के वस्त्र नोचकर फेंक देना यह भारतीय समाज के लिए एक कलंक है और यह कलंक सवर्ण को आनंद प्रदान करता है। माँ दुनिया की बहुमूल्य मूरत है जिसके सामने बड़े-से-बड़े व्यक्ति को नतमस्तक होना पडता है।

कवि ऐसे संस्कृति को जतन करनेवाले धर्मग्रंथ को त्यागने कहते हैं। इस संदर्भ में जयप्रकाश कदर्म कहते हैं, ''धर्मग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जडे हैं। इन जडों को उखाड फेंकने की जरुरत है और उसके लिए जरुर है कि लोग अधिक पढ़े ताकि इन धर्मग्रंथों में निहित अन्याय और असमानता के दर्शन को समझ सके तथा अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए स्वयं को तैयार कर सकें।''[2]

वाल्मीकिजी ने अपने कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति की है -

''इन सबके बावजूद भी

तुम नहीं जानना चाहते

घृणा और प्रेम कहाँ से शुरु होते हैं''[3]

यह वास्तववादी चित्र देखते हुए भी आप नहीं जानना चाहते? घृणा और प्रेम कहां से शुरु होते हैं? कवि पाठकों को सोचने पर मजबूर करते हैं। घृणास्पद अमानवीय व्यवहार की जड़ कहां है इस जड़ को उखाडकर फेंकने के लिए कवि कहते हैं। प्रतिशोध के रुप में कवि कहते हैं ऱ

''कैद कर रखा है तुमने तहखानों में

संस्कृति को

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 42
2. जयप्रकाश कर्दम, छप्पर (दिल्ली, राहुल प्रकाशन: दूसरा संस्करण 2003), पृ. 40
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 43

मैं पूछता हूँ

संस्कृति क्या तुम्हारी रखैल है''[1]

सवर्ण समाज हमशा से हमेशा तक संस्कृति को अपने बाप की बपौति मानता आया है। कवि उच्च-वर्ग के विरोध में विद्रोह को प्रकट करते हैं संस्कृति पूरे समाज की होती है लेकिन कुछ लोग उसे केवल अपने वर्ग तक सीमित रखते हैं।

3.3 जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह

दलित समाज का एक अंग है, लेकिन उसका स्थान आज भी गौण है, उच्च वर्ग उपने अधिकारों का फायदा उठाकर दलितों को पिसता रहा है। दलित समाज उनपर होनेवाले अन्याय अत्याचार के खिलाफ विद्रोह प्रकट करता है। जातीयता भारतीय समाज को लगा हुआ एक कलंक है। इसी जातियता ने दलितों को गुलामी दु:ख एवं वेदना के सिवा कुछ नहीं दिया। जाति के नाम पर जीना सबसे भयावह और तकलीफ देह होता है। ग्रामीण क्षेत्र के लोग अपनी जाति सुरक्षित रखना चाहते हैं। - ''एक और राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था और दूसरी और स्वयं उसमें नगर ही नहीं ग्राम्य और आँचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विषबीज विकास पा रहा था। जिससे व्यक्ति व्यक्ति के बीच की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति समाज जातिगत आधारपर अलग अलग

समूहों में विभाजित और विच्छिन्न होकर परस्पर द्‍वेष ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शो को धूमिल कर रहा था।''[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि जातीयता के कारण ही समाज विभाजित हुआ है। इसी कारण परस्पर द्वेष ईर्ष्या एवं शत्रुता की भावना बढ रही है। इससे राष्ट्रीय एकात्मता जैसे मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है। आज आधुनिक काल में भी लोग जातिभेद का ध्यान रखते हैं। समाज में हर एक व्यक्ति अपने जाति के प्रति एकनिष्ठ रहने का प्रयास करता है। अगर कोई व्यक्ति समाज के खिलाफ कोई वर्तन करें तो उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है। जातीयता मिटाने के लिए समाज में सुधार होना आवश्यक है।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ.102
2. डॉ देवेश ठाकूर, मैंला आँचल की रचना प्रक्रिया (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1987), पृ. 68

प्रस्तुत कविता संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका' में वाल्मीकि जी ने जाती व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए कहा है -

''स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना
मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में
वहाँ भी तुम
पहचानोंगे मुझे
मेरी जाति से ही''[1]

हमारे मृत्यु के बाद भी तुम हमे हमारी जाति से ही पहचानोगे इसलिए मुझे उस स्वर्ग से तिरस्कार है जहाँ जाति व्यवस्था है।

जातीय भेदभाव को मिटाने के लिए कवि आक्रोश करते हैं। इस देश की समाज व्यवस्था में जातिभेद खून में बसे हुए कोढ की तरह है। जातिभेद-छुआछूत के विरुद्ध जितने भी आंदोलन इस देश में हुए वे भी कुछ समय के बाद उसी जातिभेद में फँसे हुए दिखाई दिये। सिख, इस्लाम और इसाई जैसे धर्मो ने उँच-नीच और जात-पात को नकारा परंतु इस देश में उनके अनुयायी भी इस व्याधि से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके।

हिंदूत्ववाद की दो मापदंडोवाली भारतीय संस्कृति और उच्च जातियों के अहम् को नकारते हुए शुद्रों के शोषण के विषय में कवि कहते हैं -

''चुहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं हैं
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हो।''[2]

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 78
2. ....वही ...., पृ. 13

कवि वर्णवादी समाज व्यवस्था से प्रश्नवाचक संवाद की पहल करते हैं। जाति से मुक्ति के लिए कवि आवाह्न करते हैं। जातीय भेदभाव को नष्ट करना चाहते हैं। वाल्मीकि जी में परिवर्तन की आकांक्षा है। वे कहते हैं -

''मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नही जनेगी भंगी''[1]

कवी दलितों के मन में बरसों से पल रहे सामाजिक समानता के स्वप्न को रेखांकित करते हैं। कवि के अनुसार ऐसा क्यों होता है कि जन्म देने की जैवकीय प्रक्रिया एक होने के बावजूद भी अछूत माता अछूत को और ब्राह्मण की माता ब्राह्मण को जन्म देती है। कवि पूछता है कि यह सिलसिला अनंत काल से स्थिर क्यों है। जातिव्यवस्था के संदर्भ में जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं - ''भारत में जातिवाद कोई एक घटना नहीं है। यह एक बहुत ही जटिल सामाजिक प्रक्रिया है। एक निश्चित विचारधारा और ऐतिहासिक शक्तियों का यह गौण उत्पादन है। आज भी अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक शक्तियाँ विद्यमान हैं जो इसे बनाये रखने में गहरी रुचि रखती हैं अत: जातिवाद तोडना एक विशद एवं विकट समस्या है।''[2] दलित समाज गुलामी का खुलेआम विरोध करने लगा है। भारतीय संविधान ने दलितों के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिये हैं जिससे वह जागृत हो रहा है। दलित रुढ़ीग्रस्त मानसिकता का विरोध कर रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकिजी इस संदर्भ में लिखते हैं - ''हजारों वर्षों की प्रताडना, शोषण, द्वेष, वैमनष्य, और भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरुक दिखाई पड़ता है''[3] कवि ने दलितों में पुरुषार्थ की कितनी सहज अभिव्यक्ति की है -

''सब कुछ है

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 103
2. जयप्रकाश कर्दम, जाति एक विमर्श (दिल्ली, नवभारत प्रकाशन: द्वितिय संस्करण 2004), पृ. 67
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य सौंदर्यशास्त्र (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2001), पृ. 29

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

तुम्हारी मुट्ठी में

हवा धूप और धरती ''[1]

दलित समाज प्रकृति के साथ कठोर संघर्ष करते हुए जीवन बीता रहा है। दलित वर्ग पुरुषार्थ द्वारा सभी चीजें प्राप्त करने में समर्थ है। वह संघर्ष कर हवा, धूप और धरती को भी अपने बस में बनाने की सोचता है। दलितों में एक प्रकार की चेतना पैदा हुई है जो उन्हें गुलामी से मुक्ति का मार्ग दिखाती है।

कवि ने दलितों के उस पुरुषार्थ को अभिव्यक्त किया है जो विषम से विषम परिस्थितियों में भी अपने को टूटने एवं दिशाहीन होने नहीं देते। अत्यंत कठिन स्थिति में भी परिश्रम करके दलितों ने अपने स्वाभिमान को जागृत रखा इसी पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में की गई है -

''सभी जलाशय सूखकर

जब गहरे गड्ढों में परिवर्तित हो जायेंगे

दरक जाएगी समूची धरती

दरारों से झाँकेगा गहन अँधेरा

उस वक्त खोजते फिरोगे

उस काले कलूटे, दरिद्र

प्रताड़ित मानव को''[2]

सभी जलाशय सूख जायेंगे और यह धरती दरारों में बँट जाएगी चारों तरफ अकाल की स्थिति बनी रहेगी।

दलित समाज व्यवस्था का अंग है। वाल्मीकि जी जातीयता को नष्ट करके समानता प्रस्थापित करना चाहते हैं, और एक आदर्श समाज के निर्माण की आशा करते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में जातीयता के खिलाफ तीव्र विरोध प्रकट किया है।

''नर्म त्वचा

नहीं सह पायेगी ज्यादा देर

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 40
2. ....वही ...., पृ. 74

मक्खियों का भिनभिनाना

सुअरों की गन्ध

और नालियों में बहती बदबू

जब घुसने लगेगी नासिका रन्ध्रो में

इनकार कर देंगे फेफडे

साँस लेने से ''[1]

भारतीय समाज धर्म के नाम पर जाति-पाँति में विखंडित हो रहा है । परिणाम हमारे सामने हैं, समाज में अंधविश्वास को बढ़ावा मिल रहा है । सांप्रदायिकता जहर की तरह फैल रही है । अमीर अमीर होता जा रहा है और गरीब और गरीब बनता जा रहा है । धर्म के गलत प्रचार के कारण वर्तमान का मानव सही धर्म नहीं समझ रहा है । और वह जाति-पाँति को मान रहा है । कवि आगे कहते हैं -

''कभी सोचा है

गंधे नाले के किनारे बसे

वर्ण व्यवस्था के मारे लोग

इस तरह क्यों जीते हैं ?

तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें

कभी सोचा है ''[2]

कवि कहता है कि आज भी हमारे देश में लोग ऐसी विपरित अवस्था में जी रहे हैं। कवि ने आशा की थी कि हर एक को पेट भर रोटी मिले, पहनने के लिए कपडा मिले और रहने के लिए घर मिले लेकिन आजाद भारत में कवि का यह सपना पूरा न हो सका । कवि ने यहाँ सुखमय समाज का स्वप्न देखा था । कवि दलितों की विषम स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं -

''कुछ साल

कुछ महिने

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 101-102

2. ....वही ...., पृ. 51

या कुछ दिन ही सही

संग साथ रहकर देखो

क्या होता है

जिंदगी का सत्य''[1]

निम्न जाति जो पीडा यातनाओं को अनुभव किया जाता है । उन यातनाओं को अनुभव करके देखो आप लोगों को जिंदगी का सत्य मालूम हो जाएगा । कवि इस स्थिति का मूल जातिव्यवस्था को मानते है । जातीव्यवस्था पर तीखा प्रहार करते कवि कहतें हैं -

''याद करो

उस सरकारी क्लर्क का चेहरा

जिसे पानी पिलाने से कतराता है

चपरासी ''[2]

समाज में ऐसी जातिव्यवस्था निर्माण की है कि उच्चवर्ग का चपरासी निम्न वर्ग के अधिकारी क्लर्क को पानी भी दे नहीं सकता । कवि वर्णव्यवस्था को नकारने के लिए कहते हैं । कवि उच्च वर्ग पर प्रहार करते हुए कहते हैं -

''वर्ण व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श
खुश हो जाते हो

साम्यवाद की हार पर''[3]

आज भी उच्च वर्ग समाज में समता स्थापित करने के पक्ष में नहीं है । उन्हें डर है आज भी उच्च वर्ग समाज को आँच आ सकती है । इसलिए वह साम्यवाद की हार पर खूश हो जाता है और वर्णव्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रयास करता है -

''जब टूटता है रुस

तो तुम्हारा सीना उठ हो जाता है

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 43
2. ....वही ...., पृ. 43
3. ....वही ...., पृ. 50

क्योंकि मार्क्सवादियों ने

छिनाल बन दिया है

तुम्हारी संस्कृति को''[1]

कवि कहता है कि जब रुस में साम्यवाद की हार हो जाती है तो तुम सीना तानकर फिरते हो परंतु तुम्हे यह नहीं पता की मार्र्म्यवादियों ने तुम्हारी संस्कृति को छिनाल बना दिया है । तुम जिस संस्कृति को आदर्श मानते हो उसी संस्कृति पर मार्क्सवादी तीखा प्रहार कर रहे है । वे तुम्हारी संस्कृति का पर्दाफाश कर रहें हैं। कवि परिवर्तन की मांग करते हैं।

3.4 अंधश्रद्धा एवं धार्मिक पाखंडता के प्रति विद्रोह -

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के नाम पर धर्म के जाननेवालों का अज्ञानी लोगों पर प्रबल वर्चस्व रहा। आम जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर उन्होंने धर्म की आड़ में आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक शोषण किया। ईश्वर के प्रतिनिधि कहे जानेवाले पंडित पुरोहितों का वर्ग हमारे समाज में अधिक मात्रा में है। निम्न वर्ग अज्ञान के कारण धर्म की पाखंडता के जाल में धसता जा रहा है। सभी लोगों के मन में धर्म के प्रति श्रद्धा होती है। धर्म की इसी शक्ति के कारण लोग पुरानी रुढी तथा परंपरा का पालन करते हैं। इसी कारण समाज में अंधविश्वास का निर्माण हुआ। यह इस तरह फैल गया है कि इसका प्रभाव आज के मशीनों के युग में भी स्पष्ट दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में डॉ गंगाप्रसाद पाण्डेय का कथन है - ''बचपन में बने हुए संस्कार और अंधविश्वास में पूर्णतया छुटकारा पाना आसान नहीं होता है। लड़के तो लड़के बड़े-बूढ़े और बहुत से शिक्षित व्यक्ति भी इसके प्रभाव से बाहर नहीं हो पाते।''[2] इस प्रकार अंधश्रद्धा हमारे नसों में बसी है जिसे दूर करना मुश्लिक हो गया है।

प्रस्तुत कविता संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका' में धर्मांधता को स्पष्ट करते हुए कवि ने स्पष्ट रुप से पूँछा है -

''क्यों नहीं आती बाढ़ गंगा में?

क्यों नहीं उठकर बैठ गया अधजला मुर्दा

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 50
2. डॉ.गंगाप्रसाद पाण्डेय, आठवे दशक की कहानी में ग्राम जीवन (नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1999), पृ. 75

काशी के मणिकर्णिका घाट पर?

क्यों नहीं उमड़ा चक्रवात

महासागर की विस्तृत लहरों पर

जब पुष्प वर्षा की थी देवताओं ने तपस्वी की हत्या पर’’[1]

कवि ने स्पष्ट शब्दों में धर्मग्रंथो पर तीखा प्रहार किया है क्योंकि अंधश्रद्धा का मूल यही है। तपस्वी शंबूक की हत्या पर देवताओं ने पुष्प की वर्षा की थी तब गंगा में बाबाढ़ क्यों नहीं आई, महासागर में चक्रवात क्यों नहीं हुआ ? इन धर्मग्रंथों का उपयोग अवसरवादी सवर्णों के मतलब के लिए किया जाता है। इसलिए कवि धर्मग्रंथों को ही नकारते हैं। दलितों के शोषण का मूल धर्मग्रंथ है उसे ही कवि नष्ट करना चाहते हैं जो संस्कृति की आड में हमारा शोषण कर रहे हैं।

ब्राह्मणवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए कवि दलितों के अज्ञान का फायदा किस प्रकार उठाया जा रहा है इसे स्पष्ट करते हैं -

‘‘शब्द कभी झूठ नहीं बोलते

झूठ बोलते हैं उनके अर्थ

अर्थ जिसे बदल लेता था

गाँव का पण्डित

दक्षिणा की शशि देखकर’’[2]

पंडितो को पांखडी प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते हुए कवि ने उनपर तीखा प्रहार किया है। दलितों को अंधविश्वासों एव पाखंडी प्रवृत्तियों का विरोध करने के लिए प्रेरित किया है। दलित स्त्रियों की अज्ञानता के कारण होनेवाले शोषण को व्यक्त किया है -

‘‘माँ भी अनपबाढ़ देहातिन

जिसकी उँगलियों में बसी थी गंध

मिट्टी और गोबर की

उसे विश्वास था

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 47
2. ....वही ...., पृ. 32

पण्डित की पोथी पर

उसी तरह जैसे विश्वास था

माटी की गंध पर ''[1]

आज दलितों में शिक्षा के कारण जागृति आ चुकी है परंतु अनेक गाँवों की स्थिति में कुछ भी सुधार नजर नहीं आता । कवि का सवाल है कि दलित कारीगर अपने कौशल्य से मूर्तियां गढ़ता है उन्हीं मूर्तियों को आप मंदिर में पूजते हो परंतु उस दलित मजदूर को अपनाने के लिए घबराते हो । कवि कहते हैं -

''क्यों नहीं जगाती आस्था

देवों की पाषाण मूर्तियाँ

जो गढी हैं मैंने ही

छैनी-हथौंडे के सधे वार से ''[2]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से पाखंडी समाज व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया है। कवि कहता है कि जिस समाज में हमें स्थान नहीं उस संस्कृति को ही नकारा जाए। कवि उच्च वर्ग को संबोधित करते हुए कहते हैं -

''क्यों लगता है हमेशा

परायापन तुम्हारी संस्कृति से

क्यों उद्वेलित नहीं करते

तुम्हारे अमूर्त भाव''[3]

यहाँ समाज व्यवस्था में इतनी दरारें है कि दलितों को हर पल यातना से गुजरना पडता है। इन यातनाओं को देखकर उच्च वर्ग के भाव उद्वेलित नहीं होते, उनपर कोई असर नहीं होता। उच्च वर्ग द्वारा लिखित पुस्तकों में सत्य की परिभाषा कैद है। उसकी अनेक व्याख्याएँ उनके मस्तिष्क में हैं। उनको जैसा अर्थ चाहिए वैसे वे सत्य की परिभाषा करते हैं ।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 33
2. ....वही ...., पृ. 52
3. ....वही ...., पृ. 52

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

कवि कहते हैं -

> ''सत्य की अनेक परिभाषाएँ
> बंद है तुम्हारी पुस्तकों में
> अनेक व्याख्याएँ दर्ज हैं
> मस्तिष्ठ के कोष्ठकों में ''[1]

ब्राह्मणवादी विचारधारा पर करारा प्रहार किया है । यह समाज व्यवस्था उच्च वर्ग के इशारों पर चल रही है । उनके पाखंडी बुद्धि के कारण समाज में असमानता, अंधश्रद्धा व्याप्त है । कवि ने इस पाखंडी प्रवृत्ति का विरोध किया है ।

3.5 दलितों की राजनीति का चित्रण -

डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी ने पहली गोलमेज परिषद में अपने राजनीतिक अधिकारों के विषय में अनेक मांगे पेश की । अस्पृश्यों की समाज नागरिकता, समान मानवीय अधिकार, जातीय भेदाभेद के कारण उत्पन्न स्थिति से सुरक्षा, विधान-सभा और सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व, अस्पृश्यों के हितरक्षा हेतु पक्षपातरहित एक विभाग की स्थापना एवं गवर्नर जनरल के मंत्रीमंडल में प्रतिनिधित्व आदि प्रमुख मांगो को प्रस्तुत किया । परिणामस्वरुप दलित साहित्य पर अंबेडकर दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है । डॉ बाबासाहब अंबेडकरजी ने युवकों को संदेश दिया । उन्हीं के शब्दों में ''जिंदगी में बहुत बड़ा ध्येय होना जीवन का महत्वपूर्ण नियम है, अपना लक्ष्य पाने की दिशा में आदमी को दिन रात प्रयत्न करना चाहिए नौजवानों को समाज के उध्दार के लिए निरंतर कार्य करना चाहिए ।''[2] डॉ अंबेडकरजी दलित समाज को एकता रखने का संदेश देते हैं, सामाजिक संगठन को महत्वपूर्ण मानते हैं । साथ ही जनता का जनजीवन सुखी समृद्ध तथा सुरक्षित संपन्न बनाने हेतु भारतीय राजनीतिक संविधान में निहित मानवतावादी स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय का प्रावधान रखा । भारतीय संविधान में लोकतंत्रात्मक गणराज्य की कामना की गई जिसमें जनता के लिए अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, विचार-लेखन स्वातंत्र्य का प्रावधान रखा गया । भारतीय जनमानस के विकास के लिए विविधांगी प्रयत्न शुरु किए । इस प्रक्रिया में दलित समाज

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 102

2. लक्ष्मण हर्दवाणी, समता के समर्थक आंबेडकर (दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया: प्रथम संस्करण 2001), पृ.68

को देश की परिवर्तनशील मुख्यधारा से जुडने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका । इसके मूल्य में प्राचीन काल से चली आ रही रुढ़ी-परंपरा से ग्रस्त वर्ण-व्यवस्था की मानसिकता थी । स्वतंत्रता तो मिली लेकिन साधारण जनसामान्य की जीवन शैली में कोई फर्क नहीं आया ।

प्रस्तुत कविता संग्रह 'बस्स! बहुत हो चुका' में राजनीतिक चेतना निम्न प्रकार से व्यक्त हुई है -

''कच्चे घर नहीं रोकते
एक दूसरे को
करीब आने से
खड़े रहते हैं सहकर
जुलूस में खड़ी भीड़ की तरह''[1]

शोषितों को किसी भी प्रकार के साईन बोर्ड, किसी नारे या किसी पोस्टर की जरुरत नहीं होती । शोषितों को उनकी पीड़ा वेदना एक दूसरे के पास खींच लाती है । एक शोषित ही एक शोषित की पीड़ा समझ सकता है । दलितों को एक दूसरों के करीब आने के लिए कोई रोक नहीं सकेगा क्योंकि जब भी कभी दलित किसी अन्याय के विरुद्ध खड़ा होता है मानो जुलूस में खड़ी भीड़ हो ।

दलितों के आक्रोश को कवि ने व्यक्त किया है जो लावे का स्वरुप लेने में असमर्थ है -

''मैं जला हूँ
असंख्य लाक्षागृहों में
भोगी है नग्न वेदना
द्रोपदी-चीर हरण की
रक्तरंजित खड़ा मैं
सुन रहा हूँ खामोश आहटें
आनेवाले महाभारत की''[2]

दलित शोषण की भट्टी में जल रहा है । दलित नग्न वेदना को सहने के लिए बाध्य बनाया गया है ।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 23
2. ....वही ...., पृ. 61-62

उनके ही सामने उसके माँ बहन की आबरु लूटी जा रही है। वह अपने आक्रोश को खामोश आहों के रुप में व्यक्त करता है। क्या यह आहें महाभारत का स्वरुप ले सकती हैं। कवि ने दलितों को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया है। डॉ रघुवीर सिंह कहते हैं - ''दलित साहित्य से अर्थ लिया जाता है उस साहित्य से जो लावा है उन ज्वालामुखियों का जो हजारों बरस से सुसुप्त थे, दबे पडे थे और आज भयंकर लावा के रुप में उस व्यवस्था को तहस-नहस, चौपट करने पर उतारु हैं जो उनके बंधन का कारण थे''[1] कवि आशा करते हैं कि दलितों में आनेवाले आंदोलन में इस समाज व्यवस्था में अमूर्त परिवर्तन होगा।

कवि दलितों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं -

''जिन्हें होना चाहिए था
इस सदी का ज्वालामुखी
खडा होना चाहिए था
रक्त रंजित सडकों पर
बेबसी और कायरता की जंजीरे तोडकर''[2]

कवि दलितों को बेबसी और कायरता की जंजीरों को तोडकर रक्तरंजित सडकों पर उतरने के लिए प्रेरित करते हैं। कवि दलितों को ज्वालामुखी की भाँति विद्रोह करने कहते हैं। जिस प्रकार ज्वालामूखी भूमि पर आते ही अपना असर दिखता है उसी प्रकार प्रस्थापित समाज व्यवस्था को खोखला बना रहे है।

''बार बार पडती है चोटे
रिसता है जिस्म से लहू
जिस पर वे मनाएँगे जश्न
जो इतनी-इतनी लाशों के बाद भी
वे दे रहे वक्तव्य
सहिष्णुता और आस्था का''[3]

---

1. डॉ.रघुवीर सिंह, डॉ.अंम्बेडर और दलित चेतना (दिल्ली, कामना प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2000), पृ. 7
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 85
3. ....वही ...., पृ. 60

प्रस्तुत पंक्तियों में चेतना की अभिव्यक्ति पूर्ण संवेदना के साथ हुई है । कवि के अनुसार अल्पसंख्याकों पर अत्याचार करने के बाद उच्च जातिवाले मात्र वक्तव्य देते हैं । चीखों की सौगाते देनेवाले इन लोगों के चेहरे पर मुस्कुराहटें रहती हैं । इन सफेदपोश कपडों पर पड़े रक्त के धब्बे भले ही किसी को न दीखे लेकिन शोषितों एवं दलितों को दिखाई देते हैं । रोजी-रोटी की तलाश में दलितों की पीडाओं को देखकर उच्च जाति के लोग इस पर आनंद मनाते हैं । दलितों को यथार्थ की स्थिति छोड़कर विपरित दिशा में लाया जा रहा है परंतु कवि दलितों में व्याप्त उदासीनता एवं निराशा के स्वर को बदलने के लिए कहते हैं । एक नई चेतना की गर्जना करते हैं -

''प्रताडित शोषित जनों के
क्षत-विक्षत चेहरों पर
घावों की तरह चिपके हैं
संताप भरे दिन
उन चेहरों में शेष बची है
जो उम्मीदे अभी वह मैं हूँ''[1]

कवि आशा करते हैं सवर्णों द्वारा अनेक अत्याचार एवं शोषण के कारण जो चेहरे क्षत-विक्षत हो गए हैं । उन चेहरों पर घावों की पीडा स्पष्ट है । अपने दु:खमय जीवन में भी कवि को एक उम्मीद है । कवि ने दलितों के दु:खमय जीवन उदासीनता एवं निराशा को बदलने का आवाहन किया है । दलितों को प्रेरणा देने का काम किया है । कर्फ्यू के बाद चारों और सन्नाटा होता है । दलितों के मन पर निराशा स्थायी रुप से अधिकार पा चूकी है परंतु वाल्मीकिजी दलितों शोषितों के मन में एक नये आंदोलन की चिंगारी भर देते हैं -

''जो गहरे अक्षरों में खुदा है मेरे भीतर
पुरातत्व के शिलालेख की तरह जिसे की पर्त भी
झूठला नहीं सकती
इसलिए कर्फ्यू के बावजूद

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 17

मैं कर रहा हूँ इन्तजार तुम्हारा

...... किवाड़ खुले रखकर''[1]

आंदोलन का दमन करने के बाद आंदोलन कर्मियों को पुलिस गिरफ्तार कर ले जाती है। परंतु कवि हर क्षण एक एक नए आंदोलन की प्रतिक्षा में हैं। कवि इस आशा के आधार पर अपना प्रेम याद आता है जो अब उसके पास नहीं है लेकिन पुराने शिलालेख की तरह उसके भीतर अमिट है। कवि को आशा है कि एक दिन चेतना की चिंगारी उत्पन्न होगी और दलित विद्रोह करेंगे इसलिए कवि अपने किवाड़ को कर्फ्यू के बावजूद भी खोले हुआ है। डॉ जीतूभाई मकवाणा कहते है - ''दलित साहित्य का आंदोलन न केवल सामाजिक परिवर्तन का आंदोलन है अपितु वह सदियों से समाज में प्रचलित परंपरा संस्कृत मूल्यों के विरुद्ध एक युध्द है।''[2] कवि परिवर्तन की अपेक्षा करते हैं। दलितों को पूर्ण रुप से मनुष्य का रुप मिले, समानता प्रस्थापित हो यह कवि को आशा है -

''तब नहीं चुभेंगे

जातीय हीनता के दंश

नहीं मारा जायेगा तपस्वी शंबूक

नही करेगा अंगूठा एकलव्य का

कर्ण होगा नायक

राम सला लोलुप हत्यारा

क्या ऐसे दिन कभी आयेंगे''[3]

कवि ने पाठक को सोचने के लिए मजबूर किया है। दलितों के आक्रोश में असंख्य पीडाएँ हैं, रोष के रुप में मुखरित होने के लिए कसमसा रही हैं। कवि प्रस्थापित शोषकों को चेतावनी देते हैं। दलितों को विद्रोह करने के लिए चेतित करते हैं।

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 64
2. डॉ.जीतूभाई मकवाणा, समकालीन हिंदी दलित साहित्य: एक अध्ययन (नडियाद, दर्पण प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2004), पृ. 9
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 103

''बस्स!

बहुत हो चुका

चूप रहना

निरर्थक पड़े पत्थर

अब काम आयेंगे संतप्त जनों के''[1]

कवि ने प्रस्तुत काव्य-संग्रह में दलित समाज राजनीतिक दृष्टि से जिन यातनाओं का सामना करता है उसे अपनी तिखी वाणी से प्रकट किया है।

3.6 दलित नारी का चित्रण -

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। प्राचीन काल से नारी पुरुषों के हाथ का खिलौना बन चुकी है। उच्च वर्ग दलित नारी को सिर्फ सुख-चैन का साधन मानकर उसका शारीरिक शोषण करते आए हैं। आज भारतीय नारी भारतीय संस्कृति की विचारधारा को त्यागने की सोच रही है। नारी मुक्ति सही मायने में तभी संभव होगी जब उसे सामाजिक अधिकार प्राप्त होगा। नारी मुक्ति के अंतर्गत अलग अलग अस्मिता को बनाए रखने के साथ-साथ राजनीतिक कानूनी, परिवारिक तथा आर्थिक इन समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेने की संकल्पना निहित है। भारतीय नारी पंरपरागत धारणोओं को न पूरी तरह ठुकरा पाती है न पाश्चात्य धारणाओं को पूरी तरह अपना पाती है। वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए समस्त नीतिमूल्यों को ठुकराना चाहती है। शोषकों से मुक्ति पाना चाहती है। कवि ने श्रमजीवि साधनहीन शोषित नारी का सही और अत्यंत सटीक शब्दों में चित्रण किया है। इस वर्ग की नारी को दूसरी दुनिया की खबर नहीं है अपने घर तक ही उसका जीवन सीमित है। ''सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री विमर्श और कुछ नहीं आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी की पहल का दूसरा नाम है। स्त्री-विमर्श वस्तुत: स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद की संकल्पना है फिर भी बीसवी सदी के अंतिम दो दशक में इस विचारधारा को पनपने के लिए उपयुक्त परिवेश मिला जहाँ 'मैं' की चिंता का अहसास है, समझना चाहिए कि वहाँ से स्त्री विमर्श की शुरुवात है। जब भावाना की अपेक्षा बुद्धि की क़सौटी पर, विषमता

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 80

की अपेक्षा समता की कसौटी पर, परंपरा की अपेक्षा आधुनिकता की कसौटी पर, संस्कृति की अपेक्षा कार्य की कसौटी पर और लिंगात्मक की अपेक्षा गुणात्मक कसौटी पर व्यक्ति के मूल्यांकन का सूत्रपात होगा तभी स्त्री विमर्श के चिंतन के लिए बल मिलेगा।''[1] दुनिया के सभी धर्म स्त्री के व्यक्तिरुप को नकारते हैं। नारी आज अपनी अस्मिता के लिए लड़ रही है। नारी अपने पर हुए अन्याय का विरोध कर रही है।

प्रस्तुत काव्यसंग्रह में स्त्री जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति संवेदना के साथ व्यक्त हुई है -

''रात की सायों में
वह तलाशती है
अपने हिस्से का उजाला
धीरे से दुलारती है
गहरी नींद में सोये बच्चों को''[2]

नारी को अब तक आदर्श रुप में स्थापित किया गया है परंतु कवि दलित नारी के यथार्थ रुप को दिखाते हैं -

''बाहर एक दुनिया है
जिसे वह पकडना चाहती है
भीतर एक दुनिया है
जिसे वह जानना चाहती है
आँगन में
पेड़ की तरह खडा भय
उसे शक्तिहीन कर देता है''[3]

---

1. डॉ.अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 2008), पृ. 30
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 57-58
3. ....वही ...., पृ. 58

दलित नारी स्वतंत्रता की आकांक्षी है। वह आजादी चाहती है परंतु प्रस्थापित समाज उसे संघर्ष करने नहीं देता। सांस्कृतिक धारणाओं के कारण दलित नारी की जिंदगी दु:खमय बनती है। कवि आगे कहते हैं - दलित स्त्री का जीवन नरक के समान है। वह अपना घर चलाने के लिए उच्च वर्ग के घर में बर्तन मांजना, कपडे धोना आदि काम करती है। परंतु उसने एक दिन काम नहीं किया तो उसे भूख से लढना पडता है। इसका यथार्थ चित्रण कवि ने किया हैं -

''लकडी की पाटी पर बैठकर
वह कूटती है कपडे
माँजती है बर्तन
डाँटती है बच्चों को
कूढती है
चिल्लाती है
उस समय जब उसे होना चाहिए शांत''[1]

कवि आशा करते हैं कि हर बच्चे की भूख मिटेगी । दलित नारी की पीडा और वेदना को प्रस्तुत कविता में व्यक्त किया है । भूख को मिटाने के लिए उसे हर दिन संघर्ष करना पडता है । कवि ने हमारे देश में नारी के विपरित स्थिति का चित्रण किया है । कवि कहतें है -

''सुबह घर से निकलती माँ
और शाम को निढाल-थकी
अँधेरे में घर लौटती स्त्री
एक-सी दिखायी पडती है''[2]

सुबह काम पर जाती हुई स्त्री और शाम को वापस आती हुई स्त्री एक जैसी दिखाई पडती है - कवि ने यहाँ नारी शोषण की दाहकता को स्पष्ट किया है - आज भी समाज में नारी शोषण की शिकार होती नजर आती है । एक और नारी शोषण से पीडित है तो दूसरी और नारी होने से पीडित है । कवि नारी में

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 57
2. ....वही ...., पृ. 85-86

चेतना उत्पन्न करते हुए करते हैं -

''सुबह उठते ही वह
रात की स्याही
हवाले कर देती है धूप के
भर लेती है नया दिन
अपनी साँसों में
मुट्ठी भर सकून के लिए''[1]

दलित नारी मुट्ठी भर सुकून के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई पडती है । उसकी साँसे थोडी राहत लें सकें । परंतु आज दलित नारी शिक्षित हो रही है पुरुषों के समान वे ऑफिस में काम कर रही है । फिर भी आज उच्च वर्ग का दलित स्त्रियों के प्रति देखने का रवैया नहीं बदला है । उच्च वर्ग की मानसिकता में परिवर्तन होना आवश्यक है । वाल्मीकिजी की कविताओं में नारी को आत्मप्रेरित किया है । उन्हें सजग बनने के लिए प्रेरित किया है ।

3.7 दलित शिक्षा व्यवस्था का चित्रण -

संसार के सभी व्यक्तियों का विकास शिक्षा पर निर्भर है । शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति गतिशील प्रावधान सजग एवं सुसंस्कृत बनता है । शिक्षा व्यक्ति को उन्नति के चरम शिखर पर लाती है । शिक्षा एक ऐसा प्रकाश है जो हमारे जीवन के विविध सत्रों में पथ-प्रदर्शन करती है । ''तमसो माँ ज्योतिर्गमय'' कही जानेवाली शिक्षा रुढि-परंपरा के अंधकार को छेद दे रही है ।

भारतीय समाज व्यवस्था में वर्णव्यवस्था का प्रचलन है । ब्राह्मणों द्वारा ज्ञानार्जन, क्षत्रियों द्वारा शस्त्र धारण, वैश्यों द्वारा व्यापार और शुद्रों द्वारा तीनों वर्गों की सेवा करना अर्थात प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में ज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट वर्ण के लोगों का प्रबल वर्चस्व रहा है । सवर्ण खुद का स्वार्थ पाने की मनोवृत्ति से दलित समाज के शोषण हेतु दलितों को शिक्षा से वंचित रखते आए हैं । समाज में अपना स्थान सुरक्षित रखने का प्रयास करते रहे हैं । आज शिक्षा का माहोल कुछ और है । आज शिक्षा केंद्र राजनीति का अड्डा बन चुकी है । आशा मेहता कहती हैं - ''आज की शिक्षा संस्थाएँ घृणित

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 58

राजनीति का आखाडा बन गई हैं।''[1] दलित वर्ग शिक्षा से दूर होने से वह भौतिक सुविधाओं से दूर है इसलिए इनका विकास नहीं हो रहा हैं। शिक्षा के अभाव के कारण इनका शोषण हो रहा है। प्रस्तुत कवितासंग्रह में उच्च वर्ग की मानसिकता को दर्शाते हुए दलितों की शिक्षा व्यवस्था की स्थिति का चित्रण किया है -

''यदि लिखा था सब कुछ
तो क्यों डाँटकर भगा दिया था
मेरी माँ को पंण्डित ने
उस वक्त जब वह पूछने गयी थी
मेरी भविष्य।''[2]

ब्राह्मण हमेशा सत्ता को अपने हाथों में रखना चाहते थे। परिणामस्वरुप उन्होंने दलितों को शिक्षा से दूर रखा। अपने नीजी फायदों के लिए दलितों को पढने नहीं दिया। कवि ब्राह्मणवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं। दलितों के अज्ञान का वे किस प्रकार फायदा उठाते हैं इसका चित्रण करते हैं -

''शब्द कभी झूठ नहीं बोलते
झूठ बोलते हैं उनके अर्थ
अर्थ : जिसे बदल लेता था
गाँव का पंण्डित
दक्षिणा की राशि देखकर''[3]

ब्राह्मणवादी विचारों पर करारा प्रहार करते हुए उनकी मानसिकता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि करते हैं। अनपढ़ रहना कितना जोखिम भरा है। अशिक्षा के कारण कितने अमानवीय अत्याचारों को सहना पडता है। कवि शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हैं।

कवि शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति लाना चाहते हैं। वह दलितों को शिक्षित बनने के लिए आवाह्न करते हैं।

---

1. आशा मेहता, स्वांतत्र्येत्तर हिंदी उपन्यासों में वैचारिकता (दिल्ली, भारतीय ग्रंथ निकेतन: प्रथम संस्करण 1998), पृ. 193
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 33
3. ....वही ...., पृ. 32

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

बचपन में शिक्षा हासिल करते समय से कवि पोथियों को पढ़ना चाहते थे। उसके हर एक पंक्ति का अर्थ ढूँढना चाहते थे -

''मैं जानना चाहता हूँ
अर्थ उन पंक्तियों का
जिन्हें गुणगुणाते हो
अर्थ नहीं बताते तुम
सिर्फ व्यक्त करते हो शंकाएँ
मेरी जिज्ञासा पर''[1]

आज तक दलितों ने अनेक यातनाओं को सहा है। दलितों की वेदनाएँ लावा का स्वरुप लेने में असमर्थ हैं। दलितों में आक्रोश है परंतु वह रुँधे हुए शब्दो की तरह कवि कहते हैं कि इस तरह खामोशी रह कर कब तक डरोगे। मैं चाहता हूँ कि शब्द चूप्पी तोडकर सच को सच कहे और झूठ को झूठ। शब्दों में इतनी ताकत है कि वे एक नये आंदोलन को पैदा कर सकते हैं -

''मैं चाहता हूँ
शब्द चुप्पी तोडे
सच को सच
झूठ को झूठ कहें''[2]

कवि ने आज की शिक्षा प्रणाली पर करारा व्यंग्य कसा है और पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया है -

''वे नहीं जानते
इन स्कूल और नगरपालिका के विद्यालय
एक जैसे क्यों नहीं होते
गांधी इण्टर कॉलेज की कक्षाओं में
टूटा-फूटा फर्नीचर

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 55

2. ....वही ...., पृ. 49

और हवा में झूलता बिजली का लहू

किस शिक्षा प्रणाली का प्रतीक है''[1]

आज शिक्षा व्यवस्था में अंतर दिखाई देता है। उच्च वर्ग के बच्चे अच्छे विद्यालयों में पढ़ते हैं और निम्नवर्ग के बच्चे महानगरपालिका के स्कूल में पढते हैं। आजादी के 60 वर्षों बाद भी उच्च और निम्न वर्ग के लिए अलग सी शिक्षा व्यवस्था रही है। शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ने के अनेक कारण है। भगवान अटलानी जी इस संदर्भ कहते हैं - ''भविष्य के प्रति निराशा, अगड़ो का असमानता पूर्ण व्यवहार और यथास्थिति के स्वीकार के साथ निम्न जाति वर्ग के बच्चों को विद्यालयों में जिस मानसिकता तथ शारीरिक उत्पीडन का शिकार होना पडता था उसके कारण सामान्यत: दलित बालक की शिक्षा की बात सोचना भी दुष्कर था।''[2] दलितों को अपना पेट पालना मुश्लिक हो तो बच्चों के लिए स्लेट-कॉपी-किताब, कपडे जुडाना निम्न जाति वर्गों के लिए और भी मुश्किल है। और उनकी इच्छाशक्ति का सर्वथा लोप हो जाता है।

''बदरंग पर्दो के पीछे / छिपी विद्रुपताएँ / उधेडने लगी हैं

उगाने लगी है / कँटीली झाडियों हर एक हथेली पर

जहाँ कभी हमने / उगाये थे

कबीर के ढाई आखर''[3]

कवि कबीर की ताकद को जानते हैं इसलिए कबीर की याद दिलाते हुए विद्रोह करने के लिए कहते हैं क्योंकि कबीर हमें आज भी प्रासंगिक हैं। कवि शब्दों की ताकत को स्पष्ट करते हुऐ कहते हैं -

''तुमने पढ रखी है

ढेरों पुस्तकें

आता है दोहराना शब्दों को

बदलना अर्थों को''[4]

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ.83-84
2. भगवान अटलानी, दलित चेतना:एक प्रतिछवि, मधुमती, उमराव सालोदिया सपा., (उदयपूर, राजस्थान साहित्य अकादमी: अप्रेल, मई 2010), पृ. 63
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 67
4. ....वही ...., पृ. 50

निम्न वर्ग की तुलना में उच्च वर्ग अधिक शिक्षित है। निम्न वर्ग आर्थिक स्थिति के कारण शिक्षा हासिल नहीं कर सकता। यही वजह है कि दलितों की अज्ञानता का फायदा उठाकर उच्च वर्ग उनका शोषण करता रहा है। डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी ने कहा था कि शिक्षा लो, संगठित हो और संघर्ष करो। इसी आवाह्न से प्रेरित होकर दलित समाज आज शिक्षा हासिल कर रहा है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है। देश के किसी कोने में अगर दलितों पर अन्याय होता है तो संपूर्ण भारत के दलित आंदोलन में रास्तों पर उतर आते हैं। यह सफलता शिक्षा और संगठन के द्वारा ही प्राप्त हुई है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों को शिक्षा के प्रति सचेत रहने का संदेश दिया है। दलितों में शिक्षा के प्रति चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है। कवि वैचारिक क्रांति की अपेक्षा रखते हैं और वह तभी संभव है जब दलित वर्ग पूर्ण रुप से शिक्षित बने। कवि ऐसी वैचारिक क्रांति लाने के लिए दलितों को प्ररित करते हैं।

3.8 दलितों की आर्थिक स्थिति का चित्रण -

मनुष्य जीवन में 'अर्थ' को महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन दलित समाज को पूँजीपातियों ने आर्थिक दृष्टि से हीन बनाया। उच्च वर्ग दलितों से काम करवाते हैं लेकिन उन्हें मजदूरी अत्यल्प प्रमाण में देते हैं। इसी आर्थिक स्थिति के कारण दलित वर्ग मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रहा है। आर्थिकता ही विकास की नींव है लेकिन समाज में पूँजीपतिओं ने इस नींव को हिलाकर दलितों को कमजोर बनाया है।

डॉ सुरेंद्रनाथ तिवारी कहते हैं - "आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत नए वर्गों का प्रार्दुभाव भी हुआ है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि पूँजीपति आर्थिकता का सहारा लेकर दलितों का शोषण कर रहे हैं। दलित वर्ग के पास अर्थ का अभाव होने के कारण उसकी बुनियादी जरुरतें भी पूरी नहीं हो रही हैं।

प्राचीन काल से दलितों ने सामाजिक एवं आर्थिक असमानता की बेहद मार खाई है। दलितों को जन्म से ही सामाजिक एवं बडे होने पर आर्थिक समस्याओं को झेलना पडा है। कवि कहते हैं कि यह कैसी समाज व्यवस्था है जहाँ मनुष्य को ही मनुष्य की अस्मीता के लिए संघर्ष करना पडता है -

---

1. डॉ.सुरेंद्रनाथ तिवारी, प्रेमचंद और शरतचंद्र के उपन्यासों में मनुष्य के बिम्ब (अजमेर, कृष्णा ब्रदर्स प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1969), पृ. 29

"जिस रास्ते चलकर तुम पहूँचे हो
इस धरती पर
उसी रास्ते चलकर आया मैं भी"[1]

भारतीय समाज व्यवस्था में असमानता है चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक। कवि ने 'कद' कविता में समाज की आर्थिक असमानता को स्पष्ट किया है -

"फिर तुम्हारा कद
इतना उँचा
कि आसमान भी छू लेते हो
तुम आसानी से
और मेरा कद इतना छोटा
कि मैं छू नहीं सकता
जमीन भी!"[2]

कवि कहते हैं कि जिस रास्ते से तुम आये हो उसी रास्ते से हम आए हैं परंतु तुम्हारी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी है कि तुम आसमान छू सकते हो और दलितों के पास फूटी कवड़ी भी नहीं है। इतनी विषमता है। उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के आर्थिक असमानता को स्पष्ट करते हुए कवि दलितों को आर्थिक रुप से संपन्न एवं ताकदवर होने के लिए कहते हैं।

निष्कर्ष -

ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'बस्स! बहुत हो चुका' कवितासंग्रह में दलित समाज की वैचारिक जागृति के विविध पहलूओं को उजागर किया है। प्रस्तुत कविता संग्रह में दलितों के बीच सामाजिक चेतना, रुढिग्रस्त परंपरा के प्रति विद्रोह, जातीयता एवं अंधश्रद्धा के प्रति विद्रोह, दलितों में राजनीति, शिक्षा व्यवस्था, आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। दलितों को अन्याय अत्याचार शोषण उत्पीड़न उपेक्षा असम्मान आदि से युक्त जीवन जीना पड़ता है। अन्याय का जबाब यदि विद्रोह से देने के लिए एकाध

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन: प्रथम संस्करण 1997), पृ. 76
2. ....वही ...., पृ. 76

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

समाज या व्यक्ति तत्पर होता है तब उसके विकास के सारे रास्ते खुल जाते हैं। भारत में दलित समाज की यही हालत थी और जो अधिकार लिये गए हैं उनकी प्राप्ति आज तक नहीं हो पाई है। वे बार-बार इनके अधिकारों पर आक्रमण करते हैं। दलितों के विकास में रोडे अटकाते हैं। दलितों का विकास इन्हें खलने लगता है। दलितों को परिश्रम दिए बिना उनसे बेगार लेते हैं। समाज विकास धारा से उन्हें अछूत रखते हैं, राजनीति से दूर रखते हैं, दलितों पर अधिकार जताना अपना अधिकार मानते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं दलित होने के कारण उन्होंने दलित जीवन का अनुभव किया है परिणामत: उनकी कविताएं भी दलित जीवन से संबंधित घटनाओं का चित्रण करती हैं। वाल्मीकि जी की कविताएं दलितों में प्रेरणा जगाने का कार्य करती हैं। उनके व्यक्तित्व को देखने के बाद पता चलता है कि उन पर गौतम बुध्द, संत कबीर, संत रैदास और महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ बाबासाहब अंबेडकर जी आदि महान पुरुषों की विचारों का प्रभाव है। वाल्मीकिजी अपनी कविताओं में शिक्षा, समता और स्वातंत्र्य को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। वे मानते हैं कि संघर्ष और आपदाएँ हमें मजबूती प्रदान करती हैं। अपने जीवन में वे अनुशासन को श्रेष्ठ मानते हैं। उनका कविताएँ दलित जीवन के प्रति संवेदना जताती हैं। समाज के परंपरागत विचारों के प्रति उनके मन में विद्रोही भावना दिखाई देती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों में चेतना उत्पन्न करना चाहते हैं तथा दलित वर्ग को प्रगति के मूख्य प्रवाह से जोडना चाहते हैं। हिंदी दलित कविता में वाल्मीकिजी अपना अलग स्थान रखते हैं। उन्होंने डॉ बाबासाहेब अंबेडकरजी के विचारों से प्रेरित होकर साहित्य सृजन किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दलित समाज के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देते है साथ ही शोषित समाज की संवेदना को व्यक्त किया है। कवि ने शोषितों के प्रति विरोध प्रकट किया है। कवि समाज में समता स्थापित करना चाहते है। कवि ने प्रचलित रुढ़ि परम्पराओं पर तीखा प्रहार किया है। धर्म एवं जाति पाँति के भेदभाव पर एवं कुरीतियों पर मर्मभेदी प्रहार किए है। कवि ने दलितों को जीने के लिए संघर्ष करने का संदेश दिया है।